ज्ञान गरिमा सिंधु

संयुक्तांक: 13-14

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

संयुक्तांक (13-14)
जनवरी-मार्च 2007
तथा
अप्रैल-जून 2007

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

2840 HRD/08—1A

© कापीराइट 2007

प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110 066

विक्रय हेतु पत्र-व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी,
बिक्री एकक,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110 0066
दूरभाष - (011) 26105211
फैक्स - (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग,
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स,
दिल्ली - 110 054

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा
प्रति अंक व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए	रु. 14.00	पौंड 1.64 डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83 डॉलर 18.00
प्रति अंक विद्यार्थियों के लिए	रु. 8.00	पौंड 0.93 डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50 डॉलर 2.88

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं।
संपादक मंडल की इनसे सहमति अनिवार्य नहीं है।

संपादन मंडल

प्रधान संपादक

प्रो. के. बिजय कुमार

अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

संपादक

श्री उमाकांत खुबालकर

सहायक निदेशक

प्रकाशन

डॉ. पी. एन. शुक्ल

वैज्ञानिक अधिकारी

कलाकार

श्री आलोक वाही

प्रस्तावना

आयोग की त्रैमासिक पत्रिका 'ज्ञान गरिमा सिंधु' के संयुक्तांक (13-14) को आगे बढ़ाते हुए बेहद प्रसन्नता हो रही है चूँकि पाठकों की स्वीकार्यता के साथ लेखकों की ओर से रचनात्मक एवं गत्यात्मक प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है। रचनाएँ भी निरंतर प्राप्त होती जा रही हैं जो किसी पत्रिका के जीवन के लिए अत्यावश्यक होती हैं। लेखक परिवार से मेरा नम्र अनुरोध है कि अपने आलेखों में विषय के अनुरूप आयोग की तकनीकी शब्दावली का प्रयोग करें और दूसरों को भी इसे अपनाने की प्रेरणा प्रदान करें। इस परिप्रेक्ष्य में यह कहना समुचित प्रतीत होता है कि माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेश के अनुपालनार्थ एन.सी.ई.आर.टी. ने कक्षा नवम से बारहवीं स्तर तक की हिंदी माध्यम की स्कूल स्तरीय पाठ्य-पुस्तकों में आयोग की तकनीकी शब्दावली का प्रयोग किया है। चूँकि यह एक निर्विवाद सत्य है कि जब तक हिंदी एवं तमाम भारतीय भाषाओं में शिक्षा के माध्यम के रूप में तकनीकी शब्दावली का अनुप्रयोग नहीं होगा तब तक विश्व की अन्य उन्नत भाषाओं के समकक्ष हिंदी को खड़ा नहीं कर सकते। हम भी चाहते हैं कि सूचना एवं प्रौद्योगिकी के तेजी से बढ़ते हुए कदमों के साथ हिंदी कदम मिलाकर चले। यह हमारा पवित्र संकल्प है। हमारे पास शब्दों की कमी नहीं है। शब्द प्रचुर हैं सिर्फ जरूरत है उन्हें जीवन में, कार्यक्षेत्र में अपनाने की, फिर क्यों न यह कार्य आज से शुरू किया जाए।

इस राष्ट्रीय अभियान में आपका सक्रिय सहयोग एवं पत्रिका के लिए प्रतिक्रियाएँ अपेक्षित हैं।

(प्रो. के. विजय कुमार)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

नई दिल्ली

अनुक्रम

❑	शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं का माध्यम : एक विचारणीय प्रश्न	संजय चौधरी	1
❑	प्रशासनिक हिंदी के विकास का स्वरूप	डॉ. दामोदर खड़से	10
❑	सामाजिक समता एवं समरसता की अवधारणा और बौद्ध धर्म	डॉ. रामकुमार अहिरवार	17
❑	संगीतकार उस्ताद रहीम फहीमुद्दीन डागर से ध्रुपद गायकी पर बातचीत	उमाकांत खुबालकर	30
❑	कृषि एवं ग्रामीण विकास : समस्याएँ और समाधान	डॉ. शिव कुमार सिंह	35
❑	सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी	डॉ. गिरीश काशिद	41
❑	छत्तीसगढ़ के मेले	राहुल कुमार सिंह	51
❑	प्राचीन भारतीय परंपरा में छोटा परिवार	डॉ. आर. पी. पाठक, डॉ. अमिता पांडेय भारद्वाज	61
❑	विज्ञान और अंधविश्वास	डॉ. दिनेश मणि	68
❑	उच्च रक्तचाप	डॉ. भीमसेन बेहेरा	77
❑	शिवंकरी 'औषनिषद संस्कृति'	डॉ. जितेंद्र शर्मा	83
❑	रासलीलानुकरण का औचित्य	डॉ. राखी	94
❑	अमेरिका में हिंदू विवाह पद्धति	संतोष अग्रवाल	98
❑	महाराष्ट्र का मेलघाट और कोरकू समाज : एक अनुशीलन	श्री विशाल गजभिये	105
❑	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गांधीवाद	डॉ. पंकज तिवारी	112
❑	गीता के उपदेश अब भी व्यावहारिक हैं	डॉ. कप्तान सिंह यादव	118
❑	भारतीय संस्कृति में वृक्ष	डॉ. आर. पी. पाठक, डॉ. अमिता पांडेय भारद्वाज	129

विविध स्तंभ

❑	शब्द-भंडार : प्रशासन शब्दावली	139
❑	आयोग के प्रकाशन	144
❑	आयोग के प्रकाशनों की बिक्री के लिए प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची	150
❑	हिंदी ग्रंथ अकादमियाँ एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बोर्ड	151
❑	पत्रिका के सदस्यता शुल्क संबंधी प्रपत्र	153

संपादक की ओर से

- पत्रिका का उद्देश्य हिंदी में लेखन की तकनीकी शैली को प्रोत्साहन देना तथा सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी के क्षेत्र से संबंधित अद्यतन उपयोगी बौद्धिक जानकारी को हिंदी माध्यम से पठन-पाठन करने वालों के साथ-साथ सामान्यजन को सुलभ कराना है।
- हमारा लक्ष्य उच्च शिक्षा के स्तर पर हिंदी माध्यम से अध्ययन-अध्यापन करने वालों को अद्यतन पाठ्य-सामग्री के साथ-साथ संपूरक साहित्य, शोध लेख, तकनीकी निबंध तथा अन्य वैचारिक सामग्री उपलब्ध कराना भी है।
- पत्रिका में हिंदी में अनूदित लेखों का भी प्रावधान है।
- लेख की सामग्री मौलिक, प्रामाणिक तथा अप्रकाशित होनी चाहिए।
- लेख की भाषा यथासंभव सरल, बोधगम्य होने के साथ-साथ सूचनात्मक, शिक्षात्मक एवं रोचक भी हो जिससे हिंदी माध्यम से पढ़नेवाला सामान्य जन भी लाभांवित हो सके।
- लेख सामाजिक विज्ञान तथा मानविकी विषयों, यथा: समाजशास्त्र, पुरातत्वविज्ञान, वास्तुकला, राजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, शिक्षा, मनोविज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, बैंकिंग, पूँजी बाजार, प्रबंधन, भाषाविज्ञान, पत्रकारिता, ललित कला, पुस्तकालय विज्ञान, लोक प्रशासन आदि में से किसी विषय पर भेजे जा सकते हैं।
- लेख अधिकतम 8-10 फुलस्केप एक तरफ टंकित पृष्ठों का होना चाहिए। स्वच्छ हस्तलिखित प्रति भी स्वीकार्य होगी।
- कृपया लेख की दो टंकित प्रतियाँ भेजें।
- लेख में आयोग द्वारा प्रयुक्त तकनीकी शब्दावली का ही प्रयोग करें। लेखक के विवेकानुसार प्रयुक्त हिंदी शब्द का अंग्रेजी पर्याय कोष्ठक में अवश्य दिया जाए।
- पत्रिका में पूर्वकथित सामग्री के अतिरिक्त शब्द-भंडार, परिभाषा-निदर्श, शब्दावली चर्चा, पुस्तक समीक्षा आदि भी समाविष्ट की जाएँगी।

- आपकी प्रतिभा एवं परिश्रम का भौतिक स्तर पर मूल्यांकन तो संभव नहीं है फिर भी मौलिक लेखन के लिए मानदेय की दर 250 रु. प्रति हजार शब्द है, जिसकी अधिकतम सीमा 1,000 रु. है। अनुवाद के लिए यह दर 100 रु. प्रति हजार शब्द है।
- फोटो तथा चित्रों के भुगतान की अलग से व्यवस्था है। फोटोग्राफ श्वेत-श्याम तथा रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से होने चाहिएँ।
- ज्ञान वह प्रकाश है जो मन के साथ-साथ समाज को भी उजागर करता है। इस पत्रिका के माध्यम से ज्ञान के प्रकाश को सर्वसुलभ एवं सर्वव्यापक बनाने में आपका बहुमूल्य सहयोग प्रार्थित है।

लेख भेजने का पता:

श्री उमाकांत खुबालकर
संपादक, 'ज्ञान गरिमा सिंधु'
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
(मानव संसाधन विकास मंत्रालय)
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066

पुनश्च:

व्यक्तियों/संस्थाओं से अनुरोध है कि कृपया इस पत्रिका की प्रगति और लोकप्रियता के लिए ग्राहक बनें और बनाएँ।

शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं का माध्यम : एक विचारणीय प्रश्न

●संजय चौधरी

[महात्मा गांधी, काका कालेलकर और जाकिर हुसैन से लेकर सभी चिंतकों ने मातृभाषा अर्थात् भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में स्वीकार करने की पैरवी की है। टैगोर के अनुसार हमारे जीवन और वातावरण में सामंजस्य स्थापित करने की सच्ची शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से ही संभव हो सकती है। शिक्षा मंत्रालय द्वारा निरंतर योजनाएँ बनाए जाने पर भी इस दिशा में सफलता नहीं मिल पाई है। विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने से छात्रों पर मानसिक बोझ बढ़ रहा है और रटने की प्रवृत्ति के कारण बच्चों का बौद्धिक विकास मंद पड़ जाता है। अब समय आ गया है कि अध्यापक, अभिभावक तथा शिक्षा से जुड़े हुए सभी लोग भारतीय भाषा माध्यम के पक्ष में अभियान चलाएँ।]

प्रस्तावना

किसी भी देश का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ कैसी शिक्षा पद्धति है। बच्चों के लिए शिक्षा की

●जे एंड के-16 बी, दिलशाद गार्डन, दिल्ली -110095

उत्तम व्यवस्था तथा शैक्षणिक साधनों की उपलब्धता के आधार पर ही एक शक्तिशाली और समृद्ध राष्ट्र की नींव रखी जा सकती है। शिक्षा के संबंध में सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो राष्ट्र की वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम हो। मात्र ऐसी शिक्षा ही प्रत्येक नागरिक की आकांक्षाओं को पूरा करने में सफल हो सकती है।

भारत जैसे विविधताओं से भरे देश में शिक्षा का माध्यम अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता-आंदोलन के दौरान भी भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने की माँग बार-बार उठती रही थी। हमारे देश के अधिकांश बड़े नेता एवं सभी जाने-माने शिक्षाविद् इस बात पर बल देते रहे कि देश में बच्चों की शिक्षा के लिए मातृभाषा को माध्यम बनाया जाए। पिछले दिनों कर्नाटक एवं कुछ अन्य राज्य के स्कूलों में वहाँ की मातृभाषा को स्कूली शिक्षा का माध्यम बनाने के आदेश के बाद यह मुद्दा एक बार फिर से सुर्खियों में आ गया है।

भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने की माँग

देश की स्वतंत्रता से पूर्व भी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा के महत्व को कई मंचों से स्वीकार किया गया था। शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए 22-23 अक्तूबर, 1937 को वर्धा में महात्मा गांधी की अध्यक्षता में एक शिक्षा सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में डॉ. जाकिर हुसैन, श्री टी. के. शाह, पंडित रविशंकर शुक्ल तथा काका कालेलकर जैसे बड़े-बड़े नेताओं ने भाग लिया तथा अपने-अपने विचार रखे। इस सम्मेलन में पारित प्रस्तावों में सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के विषय में था।

महात्मा गांधी विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने के प्रबल विरोधी थे तथा ऐसी शिक्षा को बच्चों के ऊपर अत्याचार मानते थे। वर्धा में आयोजित शिक्षा सम्मेलन में गांधी जी ने कहा था, ''मैंने अपने देश के बच्चों के लिए यह जरूरी नहीं समझा कि वे अपनी बुद्धि के विकास के लिए एक विदेशी भाषा का बोझ अपने सिर ढोएँ और अपनी उगती हुई शक्तियों का ह्रास होने दें। दुनिया में और कहीं ऐसा नहीं होता। इसके कारण देश का जो नुकसान हुआ है, उसकी तो हम कल्पना नहीं कर सकते क्योंकि हम स्वयं उस सर्वनाश से घिरे हुए हैं।''

स्वतंत्रता आंदोलन के परवर्ती काल में यह माँग निरंतर जोर पकड़ती गई कि प्रशासनिक सुविधा एवं शिक्षा की उन्नति के साधन के रूप में मातृभाषा को समृद्ध बनाया जाए। महात्मा गांधी ने 1928 में गुजरात में एक भाषण के दौरान कहा था, ''हम मातृभाषा की उपेक्षा नहीं कर सकते। वह तो राष्ट्रीय आत्महत्या होगी।... हमें उसे समृद्ध करना ही होगा और उसे इस योग्य बनाना होगा कि वह सभी प्रकार के विचारों तथा भावों को व्यक्त कर सके।'' शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा के महत्व को रेखांकित करते हुए एक अन्य अवसर पर गांधी जी ने कहा था, "माँ के दूध से जो संस्कार मिलते हैं और जो मीठे शब्द सुनाई देते हैं, उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए, वह विदेशी भाषा से शिक्षा लेने पर टूट जाता है।"

शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाए जाने की माँग एक ऐसी माँग थी जिसका संबंध बच्चों के विकास से है और इसी वजह से सभी महापुरुषों ने इसका समर्थन किया। रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा था, "श्रेष्ठ शिक्षा वह नहीं जो केवल जानकारी दे। सच्ची शिक्षा वह है जो हमारे जीवन और वातावरण में सामंजस्य स्थापित करे।" लेकिन विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने का परिणाम यह होता है कि बहुत छोटी अवस्था में ही मनुष्य का विकास बाधित होने लगता है। अनजानी-अनचीन्ही अभिव्यक्तियों से भरी विदेशी भाषा के साथ बच्चा सहज महसूस नहीं करता जिसके कारण उसका व्यक्तित्व प्रभावित होता है। अपने राष्ट्र और इसकी विरासत के संबंध में बच्चों का ज्ञान भी आधा-अधूरा रह जाता है। पराई भाषा के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा बच्चों को उनकी सांस्कृतिक-ऐतिहासिक-सामाजिक पहचान से बहुत दूर कर देती है।

शिक्षा में भारतीय भाषाओं की सुस्थापना

महात्मा गांधी एवं अन्य नेताओं के सतत आग्रह के परिणामस्वरूप स्वभाषा को समृद्ध बनाने तथा इसकी शब्द-संपदा को बढ़ाने के प्रश्न पर शिक्षा शास्त्रियों ने विचार-विमर्श आरंभ किया। शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं को सक्षम बनाने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए

भारत सरकार के केंद्रीय सलाहकार बोर्ड ने 1941 में संपूर्ण देश के लिए यथासंभव एक ही शब्दावली रखने पर विचार किया। इस विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप यह निश्चित किया गया कि भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण निम्नलिखित रूप में किया जाए:

1) एक अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली, जिसका रूप अंग्रेजी होगा और जो भारत भर में सर्वत्र प्रचलित होगी।
2) भारतीय भाषा-विशेष के शब्द रख लेना सार्वजनिक शिक्षा के लिए आवश्यक माना जाए।

देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाने की दिशा में कुछ योजनाएँ बनाईं। इन योजनाओं में हिंदी में तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्य भी सम्मिलित था ताकि ज्ञान-विज्ञान की सभी शाखाओं में हिंदी माध्यम से शिक्षा दी जा सके। इसके साथ-साथ सरकारी स्तर पर अन्य भारतीय भाषाओं के लिए समान शब्दावली के विकास का महत्व समझा गया। इस कार्य को शिक्षा मंत्रालय के अधीन 1952 में स्थापित हिंदी अनुभाग ने प्रारंभ किया। इसने 1959 तक शिक्षा के सभी प्रमुख विषयों में उच्चतर माध्यमिक और कुछ विषयों की स्नातक स्तर की शब्दावलियाँ तैयार कीं।

सन् 1968 में राष्ट्रीय शिक्षा-नीति में हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं को विश्वविद्यालय-स्तर पर शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए तेजी से प्रयास किए गए। शिक्षा मंत्रालय ने प्रत्येक राज्य सरकार को विश्वविद्यालय स्तर के ग्रंथ-निर्माण के लिए 1-1 करोड़ रुपए देने की स्वीकृति दी। इस प्रकार, ज्ञान-विज्ञान के सभी विषयों में हिंदी माध्यम से अध्ययन एवं अध्यापन को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने अपनी ओर से कुछ प्रयास किए, लेकिन शिक्षा के माध्यम के रूप में भारतीय भाषाओं को उनका स्थान नहीं दिलाया जा सका। प्रत्येक राज्य ने अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषा को बढ़ावा दिया लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में इनका प्रवेश प्रमुख रूप से सरकारी स्कूलों तक ही सीमित रहा।

शिक्षा का माध्यम मातृभाषा क्यों?

यह एक विडंबना ही है कि महात्मा गांधी, रविंद्रनाथ टैगोर, जवाहर लाल नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, राधाकृष्णन और विनोबा भावे जैसे महापुरुषों

द्वारा भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने के बावजूद इस देश में शिक्षा के क्षेत्र में पराई भाषा अंग्रेजी का वर्चस्व लगातार बढ़ता गया। अधिकांश शिक्षाविद् भी यह मानते हैं कि स्वभाषा एवं मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम होना चाहिए क्योंकि छात्रों के लिए देशी शब्दावली को समझना सरल होता है। इसके विपरीत यदि बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर किसी विदेशी भाषा को सीखने-समझने का बोझ पड़ता है तो ऐसे में बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभा कुंठित हो जाती है।

जब किसी विषय की शिक्षा मातृभाषा में दी जाती है तो बच्चों के लिए नई जानकारी को ग्रहण करना सरल होता है क्योंकि यहाँ भाषा की कोई बाधा नहीं आती। लेकिन यही शिक्षा जब किसी विदेशी भाषा में दी जाती है तो बच्चों को नई भाषा में सीखने और ज्ञान प्राप्त करने का दोहरा बोझ ढोना पड़ता है। सरदार पटेल ने भाषा-विषयक इस समस्या की गंभीरता को सही समझा था-"शिक्षा जब पराई भाषा में दी जाती है तब केवल शब्दों को याद रखने का बोझ ही विद्यार्थी के दिमाग पर नहीं पड़ता, बल्कि विषय को समझने में भी उसे बड़ी कठिनाई होती है। यह तो स्पष्ट है कि जहाँ रटने की शक्ति बढ़ती है, वहाँ समझने की शक्ति मंद पड़ जाती है।"

शिक्षा पद्धति : वर्तमान स्थिति

हमारे देश की शिक्षा पद्धति में बच्चों को शुरू से 'रटंत विद्या' में पारंगत होने का अभ्यास कराया जाता है। परिणाम यह हुआ कि परीक्षा में अच्छे अंक लाना और रोजगार प्राप्त करना ही शिक्षा प्राप्त करने का एकमात्र उद्देश्य समझा जाने लगा है। इतना ही नहीं, शिक्षा को रोजगार से जोड़ देने तथा पराई भाषा को शिक्षा का माध्यम बना देने की वजह से हमने बच्चों के उर्वर मस्तिष्क को फलने-फूलने और पनपने का अवसर ही उनसे छीन लिया है।

यह एक सच्चाई है कि विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में हमारा देश कोई मौलिक योगदान नहीं दे पा रहा है। उच्च शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी का बोलबाला बढ़ रहा है लेकिन देश की अधिसंख्य जनसंख्या के लिए महँगी उच्च शिक्षा प्राप्त करना उनकी हैसियत से बाहर है। यहीं से भाषा के आधार पर भेद-भाव का

बीजारोपण होता है। यह खाई तब और गहरी हो जाती है जब हिंदी या अन्य किसी प्रादेशिक भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में तथा तत्पश्चात् किसी नौकरी के लिए अंग्रेजी माध्यम से पढ़े-लिखे उम्मीदवार से स्पर्धा करनी पड़ती है।

आज हमारे सामने यह बात स्पष्ट हो गई है कि अंग्रेजी शिक्षा से देश समृद्ध नहीं हुआ है, बल्कि यह शिक्षा एक छोटे और विशेष वर्ग की समृद्धि है। वास्तव में स्वतंत्र भारत में भाषाओं की अवहेलना की भारी कीमत हमें चुकानी पड़ी है। हिंदी एवं भारतीय भाषाओं के माध्यम से पढ़े-लिखे वर्ग में हताशा की भावना आई है तथा कुछ हद तक लोकतंत्र से मोहभंग हुआ है। अंग्रेजी ने शिक्षा के व्यावसायीकरण को बढ़ावा दिया है जिसके कारण शिक्षा और ज्ञान के प्रसार में असंतुलन पैदा हुआ है।

अंग्रेजी माध्यम : क्या खोया, क्या पाया

महानगरों से लेकर कस्बों और गाँवों तक में खुल रहे अंग्रेजी माध्यम के स्कूल जिस शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, छात्रों के लिए वह कितनी लाभदायक है यह विचारणीय है। लेकिन चूँकि हमारा विषय शिक्षा न होकर शिक्षा का माध्यम है, अतः हम अपना ध्यान हिंदी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं पर ही केंद्रित करेंगे। हमारे देश में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं एवं बोलियों का समृद्ध संसार है जिनमें से 22 भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित किया गया है। इस पृष्ठभूमि में हमारी राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने के लिए एक उपाय सोचा गया-"सब लोग अपनी-अपनी मातृभाषा की रक्षा करके हिंदी को सामान्य भाषा के रूप में पढ़कर भेद-भाव को नष्ट कर देंगे।"

(-महर्षि अरविंद)

लेकिन स्वतंत्र भारत में 'भेद-भाव को नष्ट करने' का यह भाषायी उपाय वास्तविकता का रूप नहीं ले सका। शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को जो महत्व मिलना चाहिए था, उन्हें नहीं दिया गया। हमारे देश में हिंदी सहित विभिन्न मातृभाषाओं की उपेक्षा का ही यह परिणाम है कि आज 'इंडिया' की उन्नति हो रही है जबकि असली 'भारत वर्ष' अपनी पहचान की लड़ाई लड़ रहा है। सी. वी. रमन जैसे

महान वैज्ञानिक का भी यह मानना था कि यदि भारत में विज्ञान मातृभाषा के जरिए पढ़ाया गया होता तो आज भारत दुनिया के अग्रणी देशों में होता। विज्ञान जैसे विषय की बात करें तो आधारभूत विज्ञान में घटती रुचि तथा संबंधित विषयों में प्रवेश लेने वाले छात्रों की घटती संख्या के प्रति राष्ट्रीय स्तर पर कई बार चिंता व्यक्त की जा चुकी है।

आज जापान और दक्षिण कोरिया जैसे छोटे देश अपनी-अपनी भाषाओं के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन करके औद्योगिक एवं तकनीकी संपन्नता प्राप्त कर चुके हैं जबकि अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने के कारण हम इस दौड़ में कहीं पीछे रह गए हैं। प्राचीन काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अग्रणी होने के बावजूद आज हम पश्चिम से आयात की गई प्रौद्योगिकी पर निर्भर हो गए हैं। हर क्षेत्र में अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण आज यह स्थिति है कि हमारी बहुसंख्य जनसंख्या को देश की उपलब्धियों, सरकार की विकास योजनाओं एवं यहाँ तक कि प्राचीन समृद्ध ज्ञान के बारे में भी पूरी जानकारी नहीं है। हमारे देश में सरकार तो अपनी है लेकिन शिक्षा सहित संपूर्ण सरकारी कामकाज में पराई भाषा का दखल अधिक है।

शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी के दखल के कारण छात्रों को अनेक स्तरों पर तरह-तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अधिकतर बच्चे जब प्रादेशिक भाषाओं एवं अपनी मातृभाषाओं के माध्यम से स्कूली पढ़ाई पूरी करके उच्च शिक्षा प्राप्त करने आते हैं तो पहले उन्हें अंग्रेजी सीखनी पड़ती है। अचानक माध्यम-परिवर्तन होने के कारण बच्चे भ्रम एवं संशय की स्थिति में पड़ जाते हैं। अन्नामलाई विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में श्री रामस्वामी अय्यर ने इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए कहा था, "स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम से अंतर का नतीजा यह होता है कि स्कूलों से आने वाले अधिकांश विद्यार्थी उस समय हक्के-बक्के रह जाते हैं जब वे अंग्रेजी में दिए गए व्याख्यानों तथा की गई चर्चाओं को सुनते हैं।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आज देश की शिक्षा प्रणाली शिक्षा के माध्यम की दृष्टि से विरोधाभासों का पुंज बन कर रह गई है। मैकाले ने जिस अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की स्थापना रखी थी, उसने आज अधिकांश भारतीयों को अपने ही देश में बेगाना बना दिया है। इतना ही नहीं, अंग्रेजी

के कारण शिक्षा, संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय मेधा उपेक्षित हो रही है। इसीलिए विनोवा भावे यह मानते थे कि, "केवल अंग्रेजी सीखने में जितना श्रम करना पड़ता है, उतने श्रम में हिंदुस्तान की सभी भाषाएँ सीखी जा सकती हैं।"

अंग्रेजी को प्रोत्साहन देने का यह परिणाम हुआ है कि वर्तमान समय में अधिक से अधिक माँ-बाप अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ाने के लिए सब कुछ दाँव पर लगा रहे हैं। वास्तव में शिक्षा एवं रोजगार के क्षेत्र में अंग्रेजी के वर्चस्व ने अंग्रेजी माध्यम की स्कूली शिक्षा को बढ़ावा दिया है जबकि हिंदी या प्रादेशिक भाषाओं से शिक्षा पाने वाले बच्चों के लिए आगे बढ़ने के अवसर लगातार कम हो रहे हैं। इस प्रकार, वर्ग-भेद के वातावरण में पल रहे हिंदी-भाषी स्कूल के बच्चों में हीन-भावना आ रही है जबकि अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने वाले बच्चे अपनी सांस्कृतिक विरासत से दूर होते जा रहे हैं।

भारतीय भाषाएँ हों शिक्षा का माध्यम

ऐसे में जरूरी है कि प्रारंभिक अथवा माध्यमिक शिक्षा की अपेक्षा उच्च स्तरीय शिक्षा के स्तर पर परिवर्तन के बीज बोए जाएँ तभी भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने का स्वप्न वास्तविकता का रूप ले सकेगा। उच्च शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाने का परिणाम यह होगा कि शिक्षा को सर्वव्यापक बनाने के अभियान की सफलता सुनिश्चित की जा सकेगी। उच्च शिक्षा के लिए सुनिश्चित हिंदी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं की महत्ता बढ़ने से भारतीय भाषाओं में पुस्तकों एवं संदर्भ-ग्रंथों की कमी से संबंधित समस्या भी स्वत: दूर हो जाएगी।

शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाकर हम उन विषयों का अध्ययन भी सबके लिए सहज-सुलभ बना सकते हैं जिनके लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक समझा जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष विज्ञान तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की विभिन्न शाखाओं में हिंदी एवं अन्य मातृभाषाओं में मौलिक पुस्तक-लेखन को बढ़ावा मिलेगा। इसके परिणामस्वरूप अंग्रेजी में लिखी गई तथा अनुवाद के माध्यम से उपलब्ध अस्वाभाविक एवं कृत्रिम भाषा वाली पुस्तकों के कारण जो विषय छात्रों

को नीरस एवं बोझिल लगते हैं, उन्हें रोचक बनाया जा सकेगा। इस प्रकार, रोजगार की दृष्टि से भारतीय भाषा-भाषियों के लिए नवीन संभावनाओं का सूत्रपात करना संभव हो सकेगा।

उच्च शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाने का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि आरंभिक शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में अपनाना सरल हो जाएगा। उच्च शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा जब भारतीय भाषाओं के माध्यम से मिलने लगेगी तो अभिभावकों के लिए अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की महत्ता कम हो जाऐगी। ऐसे निजी स्कूल भी भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए मजबूर हो जाएँगे अन्यथा उच्च शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा के स्तर पर उनके छात्र हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं से पढ़कर आए छात्रों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाएँगे और उनसे पीछे रह जाएँगे।

निष्कर्ष

देश के बच्चों को यदि हम अपनी सांस्कृतिक-ऐतिहासिक पहचान से जोड़े रखना चाहते हैं तो हमें शिक्षा के लिए भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में अपनाना ही पड़ेगा। तभी हम बच्चों में अपने देश के प्रति गर्व और गौरव की भावना विकसित कर पाएँगे। इसी उपाय के द्वारा सबका समग्र विकास सुनिश्चित करना संभव हो सकेगा। इस संबंध में देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के विचार दृष्टव्य हैं : "यह तो स्वयंसिद्ध बात है कि शिक्षा, संस्कृति तथा ज्ञान के क्षेत्र में आम लोग अपनी भाषाओं के माध्यम से ही पनप सकते हैं।"

वास्तव में जब बच्चे किसी पराई भाषा में शिक्षा ग्रहण करते हैं तो अपनी सांस्कृतिक विरासत से दूर हो जाते हैं। उनकी भाषा में कई भारतीय धारणाओं, परंपराओं और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए कोई शब्द नहीं होते और एक समय ऐसा भी आता है कि वे अपनी जड़ों, अपनी पहचान को ही भुला बैठते हैं। अत: बच्चों में राष्ट्रीय गौरव और आत्मसम्मान की भावना भरने के लिए भारतीय भाषाओं में शिक्षा की व्यवस्था करना वर्तमान समय की सबसे बड़ी माँग है।

प्रशासनिक हिंदी के विकास का स्वरूप

● डॉ. दामोदर खड़से

हिंदी का प्रशासनिक स्वरूप स्वतंत्रता के बाद ही उभरकर आता है। संविधान की 343 से 351 तक की धाराओं में हिंदी संबंधी आवश्यक प्रावधान किए गए हैं जिनमें यह कहा गया है कि संघ की राजभाषा हिंदी होगी और उसकी लिपि देवनागरी होगी। आँकड़े अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप के भारतीय अंक होंगे। यह भी कि नए शब्द बनाते समय मुख्यत: संस्कृत और गौणत: भारतीय भाषाओं से शब्द लिए जाएँगे। साथ ही हिंदी के विकास में सरकार का विशेष दायित्व होगा। प्रशासनिक हिंदी के विकास में संविधान के उक्त प्रावधान अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। वैसे तो यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता से पहले भी हमारे देश में शिवाजी के कार्यकाल में हिंदी में राजकीय कामकाज होता था। मुगलकाल के काफी दस्तावेज उर्दू में होते थे। लेकिन अंग्रेजों के शासनकाल में अंग्रेजी का प्रभाव इतना बढ़ा कि हिंदी और भारतीय भाषाएँ प्रशासन के करीब-करीब बाहर हो गईं। अंग्रेजों के जाने के बाद भी अंग्रेजी का मानसिक दबाव इतना अधिक रहा है कि प्रशासन जैसे क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग इतना सहज नहीं रह गया।

● सहायक महाप्रबंधक, बैंक ऑफ महाराष्ट्र, प्रधान कार्यालय, लोकमंगल 1501, शिवाजीनगर, पुणे-411005 (महाराष्ट्र)

वैसे तो हिंदी या भारतीय भाषाएँ पद्यमय भाषाएँ हैं। वैदिक काल से ही हमारी लिखित अभिव्यक्तियाँ अधिकांशत: श्लोकों में या पद्यमय ही रहीं। वेदों, पुराणों आदि में यह सहज देखा जा सकता है। अंग्रेजी भी पद्यमय भाषा रही। लेकिन कालांतर में उसने लैटिन, फ्रेंच, इतालवी, जर्मन आदि भाषाओं के शब्दों को अपनाकर अपनी शब्दावली को संपन्न किया और नई शब्दावली का निर्माण किया है। हिंदी में तकनीकी शब्दावली का निर्माण एक महत्वपूर्ण और सतत प्रक्रिया है।

सरकारी कार्यालयों में हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग करने और इस कार्य पर निगरानी रखने व निरीक्षण करने के लिए एक संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया गया है, जो राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। इस समिति ने अब तक अधिकांश सरकारी कार्यालयों, बैंकों, उद्यमों का निरीक्षण दौरा किया है और इस संबंध में प्रगति के लिए अपने महत्वपूर्ण सुझाव भी दिए हैं। इस समिति की एक उप समिति प्रशिक्षण पर भी है, जो प्रशिक्षण सामग्री को द्विभाषिक बनवाने के लिए प्रयासरत रही है। इससे कार्यालयों में हिंदी के विकास में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हो पाई हैं।

उपर्युक्त कार्य सरकारी प्रावधान से हुई सुविधाओं से संबंधित हैं। इससे संस्थानों के उच्चाधिकारियों को हिंदी के कामकाज में शामिल करने की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हुई। इसके बाद ही धीरे-धीरे प्रशासन में हिंदी का पदार्पण हुआ।

प्रारंभ में हिंदी का प्रयोग अनुवाद-कार्य तक ही सीमित रहा। अंग्रेजी की शैली में हिंदी लिखी जाने लगी। शब्द अपरिचित थे, इसलिए कठिन लगते थे। अभी भी कुछ तकनीकी शब्द कठिन ही लगते हैं। लेकिन यह कठिनाई नएपन के कारण है। जैसे-जैसे इसका प्रचलन बढ़ेगा लोग इन शब्दों को सरल और स्वाभाविक पाएँगे। वैसे कहा जा सकता है कि क्या हर सामान्य अंग्रेज चिकित्सा, विधि, अंतरिक्ष आदि से संबंधित नवीनतम या तकनीकी शब्दों को आसानी से समझ लेता है।

"चाणक्य" जैसा ऐतिहासिक धारावाहिक दूरदर्शन पर देखते हुए हमें तत्कालीन प्रचलित शब्दों को समझने में कठिनाई नहीं होती। आज भी "समाहर्ता" शब्द को जानने के लिए हमें कलेक्टर शब्द का सहारा लेना

पड़ता है। लेकिन चाणक्य युग में सिर्फ समाहर्ता ही था इसलिए यह शब्द पूर्वाग्रही नहीं होगा और समाहर्ता के ही रूप में आसानी से समझा जाता रहा होगा। इसी प्रकार, जो शब्द हमारी अपनी सांस्कृतिक परंपरा से होते हुए प्रशासन में आए हैं, वे हिंदी के लिए नए नहीं हैं, लेकिन जो शब्द अंग्रेजी में आए और हमने उनका अनुवाद किया, वे कठिन लग सकते हैं।

शब्दों को एक निश्चित स्वरूप देने का महत्वपूर्ण कार्य पिछले कुछ दशकों में हुआ है। "शब्दावली आयोग" की भूमिका भी कम उल्लेखनीय नहीं है। शब्दों के मानकीकरण की समस्या भी हिंदी के सामने रही क्योंकि हिंदीभाषी क्षेत्र में ही एक शब्द के लिए कई शब्द हैं। जैसे डायरेक्टर के लिए दिल्ली में "निदेशक" शब्द है तो मध्य प्रदेश में "संचालक" शब्द प्रचलित है। ऐसे तमाम शब्दों के मानकीकरण की आवश्यकता भी है।

कामकाजी हिंदी का एक निश्चित स्वरूप निखारने के लिए विभिन्न स्तरों पर हिंदी कार्यशालाओं के माध्यम से प्रशासनिक हिंदी को अधिकाधिक कर्मचारियों तक पहुँचाया जा रहा है। सामान्य टिप्पणियाँ, आदि के लिए आवश्यक शब्द, वाक्यांश, पत्राचार के निर्धारित प्रारूप आदि के माध्यम से कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने का अभियान प्रशासनिक हिंदी के विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

प्रशासनिक हिंदी के विकास में तकनीकी शब्दों के निर्माण की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी को अधिक स्वीकार्य शब्दावली की आवश्यकता है। प्रारंभ में इसमें कुछ ऐसा आग्रह था कि संस्कृत से ही आने जाने वाले शब्द अधिक सार्थक हैं। लेकिन धीरे-धीरे, सर्वग्राह्यता को ध्यान में रखते हुए हिंदुस्तानी शब्दों को सहजता से अपनाना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होने लगा। अंग्रेजी ने भी शब्दों के मामले में उदारता का परिचय दिया है और अन्यान्य भाषाओं के अधिक सटीक और पारदर्शी शब्दों को अपनाया है। अंग्रेजी में एक वाक्य है-'डिक्वाइट्स लूटेड ऐ बैंक।' इस वाक्य में एक भी शब्द अंग्रेजी का नहीं है फिर भी यह अंग्रेजी का वाक्य है। तात्पर्य केवल इतना ही है कि विश्व की संपन्नतम भाषाओं को भी अन्य भाषाओं के शब्दों का सहारा लेना पड़ता है। इसलिए यदि

अपनी तकनीकी आवश्यकताओं के लिए सिग्नल, ट्रेन, बैंक, चेक, ड्राफ्ट, सॉफ्टवेयर आदि शब्दों को अपनाते हैं तो इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है।

भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि "भाषा आदतों का समुच्चय है।" अभी भाषा की दृष्टि से हमारे देश में एक संक्रमण की स्थिति है। अंग्रेजी की आदत है, इसलिए हिंदी कठिन है। अंग्रेजी से ठीक से अनुवाद न हो पाने के कारण उसमें कई बार अटपटापन दिखाई देता है। हिंदी में ही यदि सोचने और लिखने की आदत का प्रारंभ हो तो यह खतरा टाला जा सकता है। उदाहरण के तौर पर कुछ वाक्यांश दिए जा सकते हैं- "प्रोडक्शन ऑफ ऑयल सीड्स" **तेल के बीजों** का उत्पादन"(प्रस्तावित - **तिलहन** का उत्पादन), "बिवेअर ऑफ हाऊस ब्रेकर्स" - "**मकान तोड़ने वालों से** सावधान रहें।" (**प्र. सैंध लगाने वालों** से सावधान रहें), "टेक स्टॉक ऑफ दि सिच्युएशन"-"स्थिति के अनुसार **माल उठा लें**" (प्र. स्थिति को **समझ लें**) "दि पोजीशन ऑफ गुड लिटरेचर इज व्हेरी टाइट"- अच्छे साहित्य की स्थिति बहुत तंग है। (प्र. अच्छे स्तर के साहित्य की बड़ी कमी है, "डू नॉट सिट ओवर दि पेपर्स"-कागजों पर न बैठें। प्र. "कागज निपटाने में विलंब **न करें**।"

उपर्युक्त उदाहरणों से लगता है कि क्षेत्र विशेष में प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का हिंदी अनुवाद मात्र शब्दकोषीय अर्थों के आधार पर किया गया है। तकनीकी अनुवाद में उपर्युक्त सावधानी की आवश्यकता सदैव रहती है। फिर भी हिंदी का प्रयोग अब दैनिक कामकाज का हिस्सा बनता जा रहा है, इसलिए मूलरूप से हिंदी में ही सोचने की प्रक्रिया को बल मिलेगा।

हम संसदीय कामकाज के संदर्भ में पाते हैं कि "मोशन" शब्द का प्रयोग बार-बार होता है। यह संसदीय प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण शब्द है। शब्दकोश में इसके अनेक अर्थ हैं -यथा- गति, गतिशील, गतिक्षमता, इंगित, अशांति, अस्थिरता, कंपन, मल, मलत्याग, प्रस्ताव। लेकिन अब हम सब जानते हैं कि संसदीय कामकाज के संदर्भ में इसे "प्रस्ताव" के रूप में प्रयोग किया जाता है। अब इससे बनने वाले तमाम शब्द भी स्वाभाविक आकार ले चुके हैं। अत: अनुवाद शास्त्र और प्रयोग में अर्थ-विज्ञान अथवा विकल्पन का बुनियादी महत्व है। इस महत्व को

देखते हुए हिंदी को इन प्रशासनिक शब्दों को अपनी प्रकृति में शामिल करना होगा। कठिनता का हौवा खड़ा कर भाषा को असमर्थ सिद्ध करने की प्रवृत्ति को बदलना आवश्यक है। सतत प्रयोग और प्रचार से ये कठिन लगनेवाले शब्द भी जनभाषा के अंग बनते जा रहे हैं।

"दूरदर्शन" संचार साधनों में एक महत्वपूर्ण और प्रभावी साधन है। विभिन्न अवसरों पर हिंदी के अनेकानेक तकनीकी शब्दों का प्रयोग इसमें देखा जा सकता है। स्थगन प्रस्ताव, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, राष्ट्रपति का अभिभाषण, तारांकित प्रश्न, शून्यकाल, सचेतक (व्हीप) आदि शब्दों का प्रयोग अब आम बात है। साथ ही, अब ये प्रचलित भी हो गए हैं। इन माध्यमों से प्रशासनिक शब्दावली का प्रसार सहजता से अनायास ही किया जा सकता है। खुशी की बात है कि इस महत्वपूर्ण प्रचार माध्यम का अधिकांश समय हिंदी माध्यम से संचालित होता है। समाचारों के माध्यम से हिंदी का प्रशासनिक स्वरूप उभरकर सामने आता है, जो जनता से सीधे जुड़ा हुआ है। कार्यालय में यह देखा गया है कि प्रशासनिक कामकाज को लेकर जो बात मूलरूप से हिंदी में लिखी गई है या अहिंदी भारतीय अपनी मातृभाषा में सोचकर हिंदी में लिखता है उसमें प्रवाह, स्पष्टता और सरलता होती है। लेकिन जब वाक्य अंग्रेजी से अनुवाद के रूप में आते हैं तब उनमें शुष्कता, नीरसता, औपचारिकता और क्लिष्ट वाक्य विन्यास का खतरा बना रहता है। हर समय कुशल अनुवादक उपलब्ध हो, यह आवश्यक नहीं है।

हिंदी अब साहित्य और मनोरंजन के क्षेत्र से प्रशासन के क्षेत्र में प्रवेश कर रही है। आज भी हमारे देश का प्रशासन अंग्रेजों द्वारा बनाए गए ढाँचे पर चल रहा है। इसलिए इस ढाँचे की शब्दावली का इस देश में होना स्वाभाविक है। साथ ही, विश्व स्तर पर कंप्यूटर, अंतरिक्ष विज्ञान और अंतराष्ट्रीय व्यापार में हो रहे तेज परिवर्तनों और संचार साधनों के कारण विश्व सिमटता जा रहा है, दूरियाँ कम हो रही हैं, ज्ञान-विज्ञान का आदान-प्रदान बढ़ गया है। परंतु हमारे देश में यह ज्ञान-विज्ञान अंग्रेजी के माध्यम से ही आ रहा है। इसलिए अंग्रेजी अन्यान्य क्षेत्रों में आज भी हमारे लिए स्रोत भाषा है और अनुवाद के माध्यम से ही हम इसे हिंदी और भारतीय भाषाओं में ला रहे हैं।

यह माना जाता है कि रूसी, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी और जापानी भाषाओं की पारिभाषिक शब्दावली पूर्ण है। संसार की केवल इन पाँच भाषाओं में सब प्रकार का साहित्य, अनुसंधान लगभग पूर्ण रूप से रखा जाता है। अंग्रेजी ने दुनिया की तमाम भाषाओं से शब्द लेकर अपने को परिपूर्ण किया है। यहाँ तक कि हिंदी, मराठी, उर्दू से भी अंग्रेजी ने शब्द लिए हैं। 1862 में अंग्रेजी भाषा के पास शब्दों की संख्या लगभग 50 हजार थी। सौ साल बाद इनकी संख्या बढ़कर 20 लाख हो गई। आज भी विज्ञान में प्रतिवर्ष 15-20 हजार नए शब्दों का निर्माण होता है। इस संदर्भ में यदि हिंदी की ओर देखा जाए तो हमें अभी काफी आगे जाना होगा। हिंदी के पक्ष में जो बहुत बड़ा गुण है वह शब्दों की पारदर्शिता का है। हिंदी में शब्द निर्माण की अपार क्षमता है। संस्कृत में अपार शब्द भंडार है। इस पृष्ठभूमि पर हिंदी हमारी सभ्यता, संस्कृति, विरासत, परंपराओं और इतिहास का प्रतिनिधित्व करती है। इन सारी बातों से जुड़ने के लिए आवश्यक है कि देश का आंतरिक कामकाज अपनी भाषा में संचालित हो।

भारत सरकार का राजभाषा विभाग कार्यालयों में हिंदी के प्रगामी प्रयोग हेतु नए-नए कार्यक्रम बनाता है। विज्ञापन की चकाचौंध दुनिया ने भी अधिकाधिक लोगों तक पहुँचने के लिए हिंदी का सहारा लिया है। हमारे देश में मनोरंजन के लिए हिंदी ही सबसे बड़ा माध्यम है। जनभाषा और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का स्थान सर्वोपरि है। फिर भी, ऐसी कौन-सी कमी है कि प्रशासनिक हिंदी का स्वरूप आज भी वह आकार नहीं ले पा रहा है। वास्तव में, सभी स्तरों पर इच्छाशक्ति होने पर प्रशासनिक हिंदी और अधिक गति से प्रवाहित होने की अदम्य क्षमता रखती है।

हमारे देश की शिक्षा पद्धति की ओर संकेत करना अप्रासांगिक नहीं होगा। हमारे देश की शिक्षा प्रणाली में त्रिभाषा सूत्र को अपनाया गया था। परंतु इस दिशा में ईमानदार प्रयास नहीं हो पाए। कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ रही होंगी। नौकरी की व्यावसायिक आवश्यकताओं या विवशताओं ने अंग्रेजी सीखने में जितना समय दिया है, उससे हमारी भाषाएँ उपेक्षित ही रही हैं। हिंदी और भारतीय भाषाओं को कभी भी व्यावसायिक, प्रशासनिक या तकनीकी स्वरूप में नहीं देखा जाता। ये मात्र भाषा के साहित्य तक ही सीमित होकर रह जाती हैं।

आज प्रशासनिक हिंदी की दृष्टि से यह सर्वत्र अनुभव किया जाता रहा है कि विश्वविद्यालयों में हिंदी के प्रयोजनमूलक स्वरूप को भी उतना ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। यदि आवश्यक हुआ तो पाठ्यक्रमों में आवश्यक सुधार किया जाना चाहिए । आज प्रशासनिक स्तर की देश की सर्वोच्च परीक्षाएँ-आई. ए. एस., आई. पी. एस. हिंदी माध्यम से भी होती हैं। सरकार द्वारा कई परीक्षाओं में हिंदी को वैकल्पिक भाषा के रूप में अपना लिया गया है। लेकिन आँकड़े बताते हैं कि हिंदी माध्यम से इन सर्वोच्च परीक्षाओं में भाग लेने वालों की संख्या नगण्य है। इसलिए महाविद्यालय/विश्वविद्यालय की ओर से इस प्रकार के ठोस प्रयास होने चाहिए कि प्रशासन के सर्वोच्च पदों के लिए भी अपनी भाषा के विशेषज्ञ तैयार हो सकें। अब एम.ए., पीएच. डी. स्तर पर प्रयोजनमूलक हिंदी का पाठयक्रम प्रारंभ कर इस दिशा में पहल की गई है।

भाषा मूलत: निरंतर चलने वाली एक अबाधित प्रक्रिया है। भारत जैसे बहुभाषी देश में यह प्रक्रिया कुछ लंबी चल सकती है, लेकिन यदि हम सामान्य व्यक्ति को अंग्रेजी के मानसिक दबाव से उबारकर उसे अपनी भाषाओं के साथ गौरवपूर्ण ढंग से उसकी अस्मिता और पहचान के साथ जोड़ सकें तो काम सरलता से पूरा किया जा सकता है।

❑

सामाजिक समता एवं समरसता की अवधारणा और बौद्ध धर्म

● डॉ. रामकुमार अहिरवार

[बौद्ध धर्म के वैश्विक स्तर पर मानव में समता दर्शन की जो भावना है वह अन्यत्र दुर्लभ है। भगवान बुद्ध पौधों और जंतुओं में जाति का होना स्वीकार करते हैं किंतु मानवों में नहीं। बौद्ध संघ में आकर चारों जातियाँ अपना प्रारंभिक नाम और पहचान खो जाती हैं। बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय की संकल्पना के लिए समर्पित बौद्ध धर्म इसीलिए विश्वभर में सर्वाधिक मान्य है और यह विश्व के अनेक देशों में राष्ट्रधर्म के रूप में अंगीकृत है। विश्वशांति एवं समता-समरसता पर बल देनेवाला बौद्ध धर्म आज भी प्रासंगिक है।]

भारतीय परंपरा **'विश्व भवत्येक नीडं'** और **'वसुधैव कुटुंबकम'** की रही है और इसमें जाति वर्ग विहीन बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध का अपना योगदान रहा है। इन्होंने दुख संतप्त संसार की दुख विमुक्ति हेतु न केवल संसार त्याग कर बहुविध प्रयत्न से **संबोधि** भी प्राप्ति की, वरन् करुणा प्रसूत वेदना से लोगों में विवेक जागरण का

● वरिष्ठ प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व अध्ययन शाला, विक्रम विश्विद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

संकल्प ले **ऋषिपत्तन मृगदाव में धर्मचक्र प्रवर्तन**[1] भी किया और अपने उपदिष्ट ज्ञान को विविध दिशाओं में बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय प्रचार-प्रसार का निर्देश दे स्वयं भी जीवनपर्यंत लगे रहे। उनका उपदिष्ट ज्ञान न केवल किसी जाति वर्ग अथवा क्षेत्र विशेष के लिए था वरन् विश्व समुदाय के लिए था। यही कारण है कि उनके बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय का लक्ष्य शीघ्र ही सर्वजन हिताय और सुखाय हो गया, तथा भारत की सीमा लांघ श्रीलंका, जापान, बर्मा (म्यांमार), चीन, नेपाल, तिब्बत आदि भिन्न-भिन्न देशों में विस्तृत हो गया, आज तो यह कई देशों में राष्ट्र धर्म के रूप में मान्यताप्राप्त है।

बुद्ध के उपदेशों के अध्ययन से स्पष्ट है कि यह धर्म होते हुए भी अपने **पंचशील** पर अवलंबन के कारण धर्म निरपेक्ष और विलक्षण है, सप्तमानुषी बुद्धों में स्वंय उनका **'विश्वभू'** संबोधन उन्हें विश्व समुदाय से जोड़ देता है, उनका **बुद्ध** या **संबुद्ध** नाम कोई व्यक्ति वाचक संज्ञा न हो वरन् **बोधि** या **संबोधि** का अभिज्ञापक है। महाज्ञानी बोधिसत्व के समय में तो, यह अभिकथन है कि *'जब तक एक भी जीव संसार में निर्वाण प्राप्ति के शेष होगा, तब तक मैं निर्वाण को नहीं प्राप्त करूँगा'* बौद्ध धर्म को और अधिक व्यापक और सार्वजनिक बना देता है।[2] **बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय लोकानुकंपाय आदिकल्याणं, मध्ये कल्याणं, परियोसानं कल्याणं** निहित भावना होने के कारण यह धर्म देश काल की सीमा को लांघकर सार्वदेशिक और सार्वकालिक हो गया। इसमें *बुद्ध द्वारा जाति-वर्गविहीन संघ की स्थापना, उसका आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्खु संघ, समता और करुणा मुदिता विषयक अवधारणा* का अपना विशिष्ट योगदान है। सम्राट अशोक के **सारनाथ सिंहशीर्ष स्तंभ** से भी इसकी सार्वदेशिकता और सार्वकालिकता का भान होता है।

तथागत **बुद्ध विश्व की सामाजिक एकता एवं समरसता** के तपस्वी महापुरुष थे, जिन्होंने सर्वप्रथम **सब्बे सत्ता होंतु च खेमिनो। सब्बे भद्दाति पस्सन्तु मा कञ्चि दुःखभागमा।।**[3] का उपदेश देकर सभी के सुख की कामना की। इसकी स्थापना हेतु तथागत ने सभी अर्हतों को आदेश दिया कि **चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय। लोकनुकंपाय, अत्थाय, हिताय, देव मनुस्सानं।।** अर्थात-भिक्षुओं!

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय और बहुजन कल्याण के लिए लोगों पर अनुकंपा करने के लिए विचरण करें और धर्म का उपदेश करें। एक साथ मत जाओ।[4] बुद्ध एक अन्य स्थान पर कहते हैं कि हे भिक्षुओ! तुम्हारी मैत्री विश्व की तरह व्यापक होनी चाहिए और तुम्हारी भावनाएँ असीम होनी चाहिए, जिनमें कहीं द्वेष का लेश भी न हो।[5] तथागत का यह स्वर संसार के समस्त मानव की सुख-शांति के लिए था जो करुणा और मैत्री पर आधारित था। उनका पंचशील सामाजिक जीवनयापन का ऐसा सिद्ध ांत है जिससे संपूर्ण समाज राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि से मुक्त हो भ्रातृभाव के साथ परिवार के समान समाज में रह सकता है। बुद्ध सर्वभूत मैत्री का आदर्श अपने सम्मुख रखते हुए संदेश देते हैं कि हम दूसरों के प्रति अपने मन में मित्रता की भावना को हमेशा प्रवाहित बनाए रखें। बुद्ध का उपदेश था कि तुम्हारा मन पृथ्वी की तरह दृढ़ हो, वायु की तरह स्वच्छ हो और गंगा नदी की तरह गंभीर हो। यदि तुम मैत्री का भाव रखोगे तो कोई तुम्हारे साथ कैसा भी अप्रीतिकर व्यवहार करे, तुम्हारा चित्त विचलित नहीं होगा।[6] **'सचित्त परियो दपन'** अर्थात-तथागत ने अपने चित्त को शुद्ध करने पर विशेष बल दिया, उनकी दृष्टि में जितनी भलाई न माता-पिता कर सकते है न दूसरे भाई बंधु उससे अधिक भलाई मनुष्य का ठीक मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।[7] संसार में वैर शांत नहीं होता, वैर तो अवैर (मैत्री) से ही दूर होता है। यही सदा से चला आ रहा सनातन धर्म है। दुष्करता से बचाकर रखा गया चित्त सुख देने वाला होता है।[8] शांति का संबंध चित्त से है और चित्त (मन) में जब तक तृष्णा क़ा भाव रहता है तब तक शांत नहीं हो सकता। तथागत के इस प्रकार के मन की पवित्रता के संदेश निश्चित विश्वबंधुत्व की प्रेरणा के स्त्रोत कहे जा सकते हैं।

गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों में **सामाजिक समानता** पर जोर दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि समाज में जन्म के अनुसार कोई उच्च या निम्न नहीं होता। अत: मनुष्य की स्थिति का निर्धारण तो समाज में कर्म से होता है अर्थात-व्यवहार (कर्म) से ही उच्च और निम्न बनता है। **न जच्चा बसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो। कम्मुना बसलो होति कम्मुना होति ब्राह्मणो।।**[9] धम्मपद के **ब्राह्मणवग्ग** में उल्लेख है कि *मैं*

ब्राह्मणी माता से पैदा होने के कारण किसी को ब्राह्मण नहीं कहता। कोई न जटा से, न गौत्र से, न जन्म से ब्राह्मण होता है।[10] **मज्झिम निकाय** के **अस्सलायन सूत्त**[11] में उल्लेख है कि चारों जातियाँ सत्गुण के पालन से **शुचिता** प्राप्त कर सकती हैं। यहाँ गौतम बुद्ध ने तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा है कि उच्च व निम्न व्यक्ति द्वारा क्रमश: चंदन व रेंडी की झांडी से जलाई गई अग्नि एक जैसी ही होती है, उसी प्रकार धम्म में किसी व्यक्ति की जाति चाहे जो भी हो वह धर्म के द्वारा आत्म सुधार के उच्चतम-शिखर को प्राप्त कर सकता है। विभाजन कैसा भी हो वह सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक या जातीय मानवता की आध्यात्मिक एकता के लिए बाधक होता है।

अत: **एकैव जातिर्लोके सामान्या न पृथक्विदा**[12] अर्थात् बौद्ध धर्म मानव को **एक जाति** की मानता है, जो सामान्य है, उसमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। *जिस प्रकार गंगा, यमुना, अचिरावती, सरयू और माही जैसी महान नदियाँ समुद्र में मिलने पर अपनी पहचान खो देती हैं, उसी प्रकार संघ में आने के बाद चारों जातियाँ अपने प्रारंभिक नाम और पहचान को खो देती हैं।*[13] इस तरह से स्पष्ट है कि किसी भी जाति, धर्म व क्षेत्र के लोग संघ में प्रतिष्ठित सदस्य बन सकते थे। जातियाँ तो पौधों और जंतुओं में होती हैं, मनुष्यों में नहीं।[14] बुद्ध ने मनुष्य के रूप में ही नही बल्कि **संसार के सर्वजीव** में जन्म लेकर प्रत्येक प्राणी के प्रति समानता का व्यवहार किया। इस संदर्भ में जातक कथाओं के उदाहरण उद्धृत किए जा सकते है। **आर. चैल्मर्स के अनुसार**[15] - गौतम के विचार आधुनिक जैव वैज्ञानिकों के निष्कर्ष से मेल खाते हैं कि मानव केवल एक ही वंश तथा जाति मनुष्य का प्रतिनिधित्व करता है। मनुष्यों के बीच जो विभिन्नताएँ हैं वे जैविक नहीं बल्कि केवल परंपरागत और नाम मात्र (सामान्य) हैं। **दीर्घ निकाय**[16] से ज्ञात होता है कि भगवान बुद्ध ने बहुत-से थारू (कुलू) आदिवासियों को बौद्ध धर्म में दीक्षित कर सम्मान पद प्रदान किया। पालि साहित्य में **थेर सुनीत** कहता है कि मैं एक निम्न वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। मैं सूखे पत्तों को झाड़ने का काम करता था। मुझसे लोग बहुत घृणा करते थे, जबकि मैं सभी के प्रति आज्ञाकारिता के भाव प्रकट करता और सबका सत्कार करता था। लेकिन

जबसे दयालु महात्मा बुद्ध ने मुझे भिक्षु बना लिया, तबसे मुझे पूरा सम्मान मिलता है।[17] **थेरीगाथा** में एक हृदयग्राही कथा का उल्लेख हुआ है-उससे पता चलता है कि, बौद्ध धर्म भारत के अस्पृश्यवर्गों के लोगों के लिए खुला वरदान था और वह लोग जाति अन्यायों से बचने के लिए बड़ी उत्सुकता से इसे ग्रहण करते थे।[18] इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न स्थलों पर निम्न वर्गों के अनेक उपासकों द्वारा नामोल्लेख के साथ **सोतापन्न, सकदागामी** और **अनागामी** पद प्राप्त करने के उल्लेख भी हैं। तथागत की दृष्टि में संसार में पतित लोग दो तरह के होते हैं। एक तो वे जो पतित होते हैं, दूसरे वे जिनके जीवन का कोई मापदंड नहीं होता। मापदंड वाले पतित लोग हमेशा पतितावस्था से उठने की कोशिश करते रहते हैं। एक अन्य स्थान पर गौतम बुद्ध ने कहा कि आदमी के लिए जीवन सुधार का कोई मापदंड होने या न होने में यही बड़ा अंतर है कि आदमी अपने स्तर से नीचे गिर पड़े, यह इतनी बड़ी बात नहीं जितनी कि यह है कि, आदमी के जीवन का कोई स्तर न हो।[19] इस तरह के उपदेशों से तथाकथित ने बहुजन समाज में चेतना पैदा की और समाज के अनेकानेक पतितों ने संदर्भ में दीक्षा प्राप्त कर उच्च स्थान प्राप्त किया।

तथागत के धर्मचक्रप्रवर्तन अंतर्गत सौमनस्य विषयक **शिक्षा** निहित है, जिनसे प्रेरणा मिलती है कि परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व में हम सब परस्पर प्रीतियुक्त मन से रहें। बुद्ध ने कहा कि जिस प्रकार राजा या दरबारी को सारा राजस्व केवल अपने ही लिए नही रखना चाहिए उसी तरह ब्राह्माणों को ज्ञान पर एकाधिकार नहीं जमाना चाहिए।[20] इस दृष्टि से शिक्षक किसी भी जाति व धर्म का हो वह सम्मान का हकदार होता है, बशर्ते उसमें श्रद्धा, शील, शिक्षा, त्याग और प्रज्ञा हो और कुछ करने की इच्छा और क्षमता हो तो वह समाज के उच्चतम स्थान को प्राप्त कर सकता है। तथागत ने निर्भीकतापूर्ण कहा कि जन्म की अपेक्षा सदगुण, ज्ञान और अभ्यास से प्राप्त किया गया पुण्य ही योग्यता का मापदंड है।

बुद्ध संसार के प्रत्येक **व्यक्ति की स्वतंत्रता** पर बल देते हैं क्योंकि व्यक्ति ही मानव सभ्यता के विकास में सहायक होता है। शारीरिक स्वतंत्रता की अपेक्षा मनुष्य की अपनी विचारों की स्वतंत्रता अधिक महत्वपूर्ण होती है। कोशल जनपद के केसपुत्तिय नगर में कालाम क्षत्रियों

के प्रश्न का उत्तर देते समय तथागत बुद्ध ने जो उपदेश दिया था, उसे विश्व के मानव समाज का स्वतंत्र चिंतन का घोषणा पत्र कहा जा सकता है।[22] तथागत ने कहा था कि, **हे कालामो!** *किसी बात को केवल इसलिए मत मानो कि वह तुम्हारे सुनने में आई है, कि वह परंपरा से प्राप्त हुई है, व कि बहुत लोग उसके समर्थक हैं, व कि धर्मग्रंथों में लिखी है, व कि वह तर्क(शास्त्री) के अनुसार है, व कि वह न्याय (शास्त्र) के अनुसार है, व कि ऊपरी तौर पर वह मान्य प्रतीत होती है, व कि वह अनुकूल विश्वास व अनुकूल दृष्टि की है, व वह ऊपरी तौर पर सच्ची प्रतीत होती है, व कि वह किसी आदरणीय आचार्य द्वारा कही गई है.....।*

कालाम क्षत्रियों द्वारा पुनश्च पूछने पर तथागत ने बताया कि-**कालामो!** कसौटी यही है कि स्वंय अपने से प्रश्न करो कि क्या अमुक बात का करना हितकर है? क्या, निंदनीय है? क्या विज्ञजनों द्वारा निषिद्ध है?, क्या कष्ट और दुख होता...? अत: जो अनुकूल लगे उसे ग्रहण करना और समय के साथ परित्याग व ग्रहण भी कर सकते हो.....। यह स्वतंत्रता का उपदेश विश्व के संपूर्ण मानव जगत के लिए अपूर्व देन कहा जा सकता है।

अन्य धर्म व समाज में जहाँ नारी परतंत्र थी वहीं तथागत ने **नारी समाज को स्वतंत्रता** के साथ-साथ सम्मान भी प्रदान किया। यही कारण है कि उसमें बौद्ध भिक्षुणियाँ, उपदेशिकाएँ ही नहीं बनीं अपितु उन्होंने विपुल साहित्य का सृजन भी किया जिसका संकलन थेरीगाथा नामक ग्रंथ में प्राप्त होता है जिसमें प्रमुख चांडाल कन्या प्रकृति तथा बुनकर कन्या आलबी.. इत्यादि हैं।

इस तरह की स्वतंत्रता से ही **धर्म निरपेक्ष राज्य** की कल्पना कर सकते हैं, जो बुद्ध धर्म में निहित है। **डॉ. बी. आर. अंबेडकर के अनुसार**[23] केवल बौद्ध धर्म ही सही अर्थों में धर्मनिरपेक्ष राज्य को बलशाली बनाने में सहायक है। ऐसे ही जिस-जिस राज्य को धर्म निरपेक्ष बनाना है, उस राज्य की बिना बुद्ध के रास्ते गति नहीं है। धर्म निरपेक्ष का प्रचार, धम्म का प्रचार है और धम्म का प्रचार, धर्म निरपेक्षता का प्रचार है। **स्वतंत्रता, समता, बंधुता** तथा **न्याय** इन चार सूत्रों पर आधारित नए समाज का निर्माण करने हेतु उन्होंने बुद्ध धर्म के आदर्श को स्वीकार किया। इसीलिए इनके धर्मांतर को हम **धम्म क्रांति** कहते हैं।

भारत के राष्ट्रीय ध्वज पर अशोक चक्र का अभिप्राय ही धर्म निरपेक्ष राज्य का प्रतीक है।

तथागत **बुद्ध दया** एवं **करुणा** के महासागर थे। वे संसार के समस्त प्राणियों के प्रति करुणा रखने का आग्रह करते हैं। बचपन से ही सिद्धार्थ में करुणा के प्रारंभिक लक्षण विद्यमान थे। हिंसा तो क्या वे निर्दोष प्राणियों के वध के साक्षी भी नहीं होना चाहते। क्षत्रिय धर्म के पालन में माता गौतमी से कहते हैं कि माँ यह तो बता कि आदमी का आदमी को मारना एक आदमी का धर्म कैसे हो सकता है? यदि क्षत्रिय परस्पर एक दूसरे को प्रेम करें तो क्या बिना कटे-मरे वे राष्ट्र का संरक्षण नहीं कर सकते।[24] एक पक्षी को मारकर उस पर अधिकार जमाने वाले देवदत्त से सिद्धार्थ कहते हैं कि हत्यारा कैसे किसी का स्वामी हो सकता है? ये विचार कालांतर में सिद्धार्थ के **महाकारुणिक** बनने में सहायक सिद्ध हुए।

जानबूझकर हिंसा करने का तात्पर्य है अंतर्निहित अखंडता को बाधित और नष्ट करना तथा सम्मान और करुणा, जो कि मानवताद के आधार हैं, की भावनाओं को कुंठित करना। अहिंसा में आनंदित होना तथा मैत्री पूर्ण चित्त की भावना पैदा करना (मेत्ताचित्त भावना) एक समान ही है। अत: मैत्रीपूर्ण चित्त का विकास तभी संभव है जब सभी जीवित प्राणियों की खुशी, सुख तथा भलाई की कामना की जाए। **बौद्ध धर्म की अहिंसा** को जैन धर्म में इस अर्थ में बताया गया है कि **'सब्बे जीवावि इच्छन्ति जीविउ न मरिविउ'** अर्थात-सभी व्यक्ति अपने जीवन से प्यार करते हैं और किसी अन्य से हानि पहुँचाने या मारे जाने की इच्छा नहीं रखते हैं। अतएव बौद्ध धर्मानुयायी से आशा की जाती थी कि उसे न केवल हिंसा करना चाहिए बल्कि दूसरों को भी हिंसा के लिए रोकना चाहिए। यह अहिंसात्मक सिद्धांत आज विश्व के राष्ट्रों के लिए प्रासांगिक है। उपासकों और उपासिकाओं से जिस पंचशील के पालन करने को कहा गया है उनमें पहला है जीव हिंसा से बचना। तथागत बुद्ध ने पवित्रता के पाँच मापदंड बताए हैं[25] **जिनमें किसी प्राणी की हिंसा न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, असत्य न बोलना, नशीली चीजों को ग्रहण न करना। ये पाँच शील तथागत ने मानव जीवन की अच्छाई-बुराई मापने के मापदंड बताए हैं।**

मार्गदाता बुद्ध ने परिव्राजकों को **अस्टांगिक मार्ग**[26] तथा **दस शील**[27] का उपदेश देकर विश्व के समस्त प्राणियों के सार्वजनिक हित की कामना की। जिसमें **विश्व बंधुत्व, माधुर्य, प्रेम, शांति, संज्ञान, सौमनस्य, एकता, संगठन, परोपकार** आदि की प्रेरणाएँ सन्निहित हैं। संसार में आने का तथागत का उद्देश्य ही यह है कि दरिद्रों, असहायों और आरक्षितों का मित्र बनना। जो रोगी हो-श्रमण हो या दूसरे कोई भी हों उनकी सेवा करना। दरिद्रों, अनाथों और बूढ़ों की सहायता करना तथा दूसरों को ऐसा करने की प्रेरणा देना।[28] इस प्रकार बौद्ध साहित्य में बुद्ध के अनेकानेक उपदेश, विश्व की सामाजिक एकता एवं समरसता के उपदेश बहुतायत में हैं।

भारत ही नहीं बल्कि विश्व की **शिल्प एवं काष्ठ कला** में भी तथागत के विविध रूपों का उत्कीर्णांकन हुआ, जिसमें सामाजिक समरसता की अवधारणा निहित है। कला तत्कालीन समाज के चित्रण का सशक्त माध्यम होता है। प्रारंभ में जहाँ शिल्पी ने हीनयानी परंपरा से प्रभावित हो बुद्ध के विविध प्रतीकांकनों का उत्कीर्णन कला में किया, वहीं कालांतर में महायानी परंपरा का प्रादुर्भाव होने के कारण बुद्ध तथा उनसे संबंधित विविध रूपों की प्रतिमाओं का भी निर्माण किया। लेकिन प्रतिमाओं का आदर्श प्राकृतिक एवं विश्वव्यापी ही रहा है। **विश्व बंधुत्वता** का भाव उनके **आगत-अनागत चातुर्द्दिश भिक्षु संघ** और **धम्मचक्र प्रवर्तन** जिसे सिंहनाद के रूप में भी अभिहित किया गया है, में लक्षित होता है। उदाहरण के रूप में सारनाथ से प्राप्त सम्राट अशोक द्वारा निर्मित **सिंह शीर्ष स्तंभ** उद्धृत किया जा सकता है। देश-जाति से परे चातुर्द्दिश भिक्षु संघ वह संघ था जिसमें सभी दिशाओं से सभी प्रकार के लोगों ने आकर संघ में प्रवेश लिया था। यही कालांतर में जब संघ के भेद और उपभेद होने लगे थे तो सम्राट अशोक ने सिंह शीर्ष स्तंभ के माध्यम से संघ को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। संभवत: सिंह शीर्ष स्तंभ में चारों दिशाओं की ओर मुख किए चारों सिंहों के प्रतीकांकन में विश्व बंधुत्व की परिकल्पना निहित है।[29] स्तंभ के नीचे चार पशु - **हाथी**-बुद्ध की धैर्यता, **वृषभ**-कृषि का, **अश्व**-शक्ति का और **सिंह**-शाक्य वंश के प्रतीक कहे जा सकते हैं। इनके बीच में चार चक्र बुद्ध के धर्म

चक्र हैं जो अखंड कालचक्र के सार्वकालिता के उद्‌बोधक हैं। **धर्म चक्र बौदधों का प्रतीक चिह्न** है। इसे नियमों अथवा सिद्‌धांतों का चक्र कहा जाता है। बुद्‌ध द्‌वारा सारनाथ में दिए गए प्रथम उपदेश को **धर्म चक्र प्रवर्त्तन** कहा गया है। तभी से बौद्‌धों का यह धर्मचक्र नियमों के प्रतीक के रूप में चला आ रहा है। इस धर्मचक्र में **8×4=32** अरें है, जो अष्टांग मार्गों के प्रतीक कहे जा सकते हैं। जिस प्रकार अरों के बिना चक्र की गति असंभव है, उसी प्रकार इन आठ मार्गों के बिना धर्म की गति संभव नहीं है। ऐसा माना जाता है कि स्वयं बुद्‌ध ने चावल के दानों से भूमि पर इस चक्र को बनाया था जो कर्मों के अनुसार जन्म तथा मृत्यु का प्रतीक है और मनुष्य की तृष्णाओं के कारण यह चक्र चलता ही रहता है। इसमें तीन धुरियाँ हैं, जो दुख के तीन कारणों को द्‌योतित करती हैं। यह चक्र इस ब्रह्मांड के प्रत्येक वस्तु के परावर्तन का भी प्रतीक है। पाल राजाओं के अभिलेख में प्राय: समस्त अभिलेखों के पूर्व धर्मचक्र मुद्रा अंकित है। **प्रो. एस. आर. दुबे के अनुसार**[30] निश्चित ही वैचारिक मतभेद और क्षेत्रीयता की प्रवृत्ति ने बौद्‌ध धर्म संघ को विविध संप्रदायों में विभक्त कर दिया, किंतु यह सुविदित है कि प्रारंभिक आगत-अनागत चातुद्‌दिश भिक्खु संघ की आदर्श अवधारणा दीर्घावधि तक संघ में प्रभावी रही, जब धर्म संप्रदाय विभिन्न धुरियों में बंट गए तो उन संप्रदायों के लिए बनवाए गए आरामों में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से आने वाले भिक्षुओं का सम्मान अनुमन्य है। अशोक बौद्‌ध धर्म के किसी संप्रदाय विशेष के प्रति भले ही अभिलाषित रहा हो, किंतु वह समस्त सधर्म के चिरस्थायित्व की मंशा व्यक्त करता है। परंतु लगता है जनमानस धीरे-धीरे मतभेद से सुपरिचित और अभ्यस्त हो गया और वह भिन्न उप संप्रदायों में नामोल्लेख के साथ दान करता है। इस प्रकार अशोक का यह धर्मचक्र भारत का राष्ट्रीय प्रतीक बना। **स्तूप** के **चतुद्‌दिश तोरण द्‌वार** भी बुद्‌ध के उपदेशों के दिक-दिगंत तक प्रचार-प्रसार के रूप में लेकर इसे सार्वदेशिक कहा जा सकता है।

बौद्‌ध धर्म मूलत: **अनात्मवादी** और **अनीश्वरवादी** था। स्वयं बुद्‌ध ने मूर्ति निर्माण और पूजा का स्पष्ट निषेध किया था किंतु श्रेष्ठ ज्ञान के आराध्य की प्रत्यक्ष मूर्ति मान मन की स्वत: स्फूर्त एवं सहज स्वभाविक

परिणति रही है, जिसने कालांतर में बुद्‌ध मूर्ति को जन्म दिया। इसमें थेरवादी बौद्‌ध धर्म का प्रभाव प्रभावी रहा, जहाँ दाता- पुण्य की बहुजन हिताय कामना करता है वह क्रमश: महायानी प्रभाव में सर्वसुखाय बन जाता है। यही कारण है कि **बुद्‌ध ने अपना कोई उत्तराधिकारी नहीं** बनाया। प्रारंभ में जहाँ स्तूप निर्माण का ही प्रचलन दिखाई देता है, वहीं कुषाण काल तक बोधिसत्व की मूर्ति के निर्माण का प्राधान्य दिखाई देता है। बोधिसत्व का भी अस्तित्व मिलता है। कम ही सही बुद्‌ध की मूर्तियाँ भी मिलती हैं, जबकि गुप्तकाल में इन्हीं का प्राधान्य हो जाता है। कतिपय नवीन विशेषणों के साथ बुद्‌ध को स्मरण किया जाने लगता है। समय अनुसार बौद्‌ध देव कुल में **आदिबौद्‌ध** और उनकी शक्ति **आदिप्रज्ञा** (प्रज्ञापारपिता) की कल्पना की गई जिसे सृष्टि के कर्ता और माता-पिता माना गया है।[31] **सप्त मानुषीबुद्‌धों** (तथागत) में बुद्‌ध का एक नाम **विश्व भू** है[32] जिसे विश्व के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। वर्तमान कल्प के अधिनायक **बोधिसत्व अवलोकितेश्वर** हैं, इन्हें बौद्‌ध धर्म महावस्तु अवदान में भगवान कहा गया है कि ये संसार का अवलोकन करते हैं और मनुष्यों के हितों के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। इन्हें **महाकारुणिक अवलोकितेश्वर** भी कहा गया है।[33] इनके हाथ में पद्‌म होना (पद्‌पाणि अवलोकितेश्वर) संसार में जीवन की पूर्णता से संबंधित हैं, जिनकी प्रतिमाएँ कुषाण-गुप्तकाल से उत्कीर्ण होने लगी थीं।

बौद्‌ध परंपरा में विश्व बंधुत्व की भावना की परिकल्पना से संबंधित ज्ञान, बुद्‌धि और स्मृति देने वाले **मंजूश्री** की भी मूर्तियाँ बनीं।[34] मंजूश्री के दक्षिण में प्रज्ञाखड्‌ग और वाम कर में प्रज्ञापारमिता (एक ग्रंथ) प्रदर्शित होता है, जो खड्‌ग द्‌वारा संसार के अज्ञान का नाश और ग्रंथ द्‌वारा ज्ञान का प्रसार करते हैं। दुख रूपी समुद्र से लोगों को पार करने वाली तथा पवित्रता एवं स्वर्गिक ज्ञान की देवी **तारादेवी** का भी महत्वपूर्ण योगदान है।[35] **तिब्बत** की परंपरानुसार संसार की कोई भी चरित्रवान स्त्री तारा हो सकती है।

इस प्रकार बौद्‌ध कला में देवताओं की परिकल्पना भी समय परिस्थितिनुसार विश्व बंधुत्व तथा जगत के कल्याणार्थ निर्मित एवं प्रतिष्ठित हुई। इनकी पुष्टि अभिलेखों से भी होती है। **गुप्त संवत् 125**

के अभिलेख से ज्ञात होता है कि कुमार गुप्त प्रथम के शासनकाल में मथुरा के कुमारदास भट्ट ने माता-पिता तथा समस्त जीवों के सुख के लिए बुद्ध मूर्ति प्रतिष्ठित की।[36] 161 गुप्त संवत् वाले अभिलेख पर एक चौकोर खंडित प्रस्तर पट्टिका है जिस पर **प्रो. एस. आर. दुबे** ने चार बुद्ध प्रतिमाओं के बने होने का अनुमान किया है।[37] क्योंकि अभिलिखित पंक्ति से विदित होता है कि **गंगा बल पुत्र मधुण** ने माता-पिता तथा समस्त प्राणियों के पुण्य प्राप्ति के निमित्त चार बुद्ध प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराई थी। कुमार गुप्त के 126 वर्ष के **मानकुंवर अभिलेख**[38] (इलाहाबाद) में बुद्ध मूर्तिलेख में **सम्यक संबुद्ध** एवं **स्वमताविरुद्ध** इन दो उपाधियों से बुद्ध का स्मरण किया गया है जिसका उल्लेख पालि पिटक में मिलता है। यहाँ पर आशय है कि अपने द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर चलने अथवा कथनी और करनी में समानता वाले भगवान बुद्ध की प्रतिमा की स्थापना सभी लोगों के दुख निवारणार्थ **भिक्षु बुद्ध मित्र** ने की थी।

छत्तीसगढ़ (भाँदक) से उपलब्ध भवदेवरण केसरी के शिलालेख में करुणा मैत्री जितेंद्रीयता आदि गुणों का स्मरण करते हुए, **जिन, तायी, सुगत** नाम से बुद्ध की स्तुति की गई है।[39] हर्ष के **बाँसखेड़ा अभिलेख**[40] में **परम सौगत इव परहितैकरतः** कहा गया है। पाल अभिलेखों में **मुनींद्र, सुगत**[41], **सक्क**[42], **दशबल**[43], **शाद्धोदन**[44] आदि नामों से पुकारा गया। पाल अभिलेखों से ज्ञात होता है कि दाता अथवा प्रतिष्ठाता तज्जन्य से संसार के समस्त प्राणियों के हित की कामना करता है। विश्व की परिकल्पना कर प्रस्तर पट्ट पर वृत्त के अंदर अंकित अंडाकार वृत्त बौद्ध प्रतीक बनाने के उल्लेख भी मिलते है। श्रीनगर के **आचार्य कमल श्री** ने स्वामी लोकितेश्वर मंडल का निर्माण कराया, जो विश्व के ज्ञान और शांति एकता का प्रतीक कहा जा सकता है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि गौतम बुद्ध द्वारा संस्थापित बौद्ध धर्म में विश्व सामाजिक समता एवं समरसता की अवधारणा निहित है, जो देश, काल, जाति, वर्ग से परे संसार के प्रत्येक प्राणी के लिए सर्वसुखाय है। और उनकी यह दृष्टि **'बुद्ध चक्खुना लोकं व्यालोकेसि परिफंदमानं पंज'** की परिभाषा थी। विश्व में बुद्ध ही सर्वप्रथम एक

ऐसे महापुरुष हुए जिन्होंने विश्व को अहिंसा एवं सामाजिक एकता का उपदेश दिया। यही कारण रहा कि समयानुसार विश्व के अनेक मनीषी एवं चिंतक भारत आए और अनेक वर्षों तक यहाँ रहकर बौद्ध धर्म का अध्ययन ही नहीं किया बल्कि बुद्ध के उपदेशों को अंगीकार कर विश्व में प्रचार-प्रसार भी किया। फलतः विश्व के अनेक देशों में राष्ट्र धर्म के रूप में स्वीकार भी हुआ। अतः विश्व शांति एवं एकता की दृष्टि से बौद्ध धर्म के सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं।

सब्बे सत्ता सुखी होंतु=सभी प्राणी सुखी हों।।

❑

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. अम्बेडकर, भीमराव रामजी (अनुवादक-डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन)-भगवान बुद्ध और उनका धर्म, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, 1997, पृष्ठ-50, सारनाथ में पाँच परिव्राजकों-**कौंडिन्य, अश्वजित्, वाष्प, महानाम तथा भद्रिका** को सर्वप्रथम बुद्ध ने शिक्षा दी, जिसे **धर्मचक्रप्रवर्तन** कहा जाता है।
2. महावस्तु अवदान, गुणकारंड, तुलनीय-तिवारी, मारुति नंदन, मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण, वाराणसी, 1997, पृष्ठ-219
3. **सब्बे सत्ता होंतु च खेमिनो।...**
4. महावग्गो, विनयपिटक-1/9/30
5. भगवान बुद्ध और उनका धर्म, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, 1997, पृष्ठ-235
6. वही, पृष्ठ-235
7. धम्मपद-3/43, कौसल्यायन, भदंत आनंद, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, 1993, **न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका। सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो नं ततो करे॥**
8. धम्मपद -1/05
9. **न जच्चा बसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो। ...**
10. धम्मपद-9/393, **न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो। यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो॥**
11. दी मज्झिमानिकाय, संपादन-व्ही. ट्रेन्कर एंड आर. चैल्कर्स, लंदन, 1888-1896, पृष्ठ 147, तुलनीय -के. टी. एस. सराओ-प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्मः उद्भव, स्वरूप एवं विकास, ताइवान, 2005, पृष्ठ-156
12. दिव्यावदान।
13. दी विनय पिटक, संपादक-एच. ओल्डनेवर्ग, लंदन, 1879-1883, पृष्ठ-239, वही, पृष्ठ-158
14. दी मज्झिमानिकाय, पूर्वोक्त-पृष्ठ-159
15. जर्नल ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, 1994 पृष्ठ-396
16. चतुरसेन, आचार्य-बुद्ध और बौद्ध धर्म, दिल्ली, पृष्ठ-34
17. वही,

18. वही, सिंह, मदनमोहन-बुद्धकालीन समाज और धर्म, दिल्ली पृष्ठ-1-30
19. भगवान बुद्ध और उनका धर्म, बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर, 1997, पृष्ठ-09
20. जातक कथा भाग-4 पृ.-200, के. टी. एस सराओ, पूर्वोक्त, पृष्ठ-180
21. अंगुत्तेर निकाय-तिक निपात, भगवान बुद्ध और उनका धर्म, नागपुर, 1997, पृ. 218
22. वही,
23. संघरक्षित महास्थविर - डॉ. अम्बेडकर की धम्म-क्रांति धर्म और धर्म-निरपेक्ष राज्य, ताइवान, पृ.-33-45
24. भगवान बुद्ध और उनका धर्म-1/8, नागपुर, 1997, पृ. 12
25. वही, द्वितीय भाग- 2/3/5, पृष्ठ-96
26. अष्टांगिक मार्ग- **सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि**
27. दस शील -**शील, दान, उपेक्षा, नैषक्रम्य, वीर्य, शांति, सत्य, अधिष्ठान, करुणा, मैत्री।**
28. भगवान बुद्ध और उनका धर्म, नागपुर, 1997, पृ.-234
29. सारनाथ का शीर्ष स्तंभ जो वहीं के केंद्रीय संग्रहालय में संरक्षित है।
30. दुबे, सीताराम - अभिलेखों के प्रकाश में बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृष्ठ-304, बुद्धिज्म एंड लिटरेचर, इंटरनेशनल सेमीनार, 2002, आयोजक-नवनालंदा बोधिविहार, नालंदा में पढ़ा गया शोध पत्र।
31. गुह्य समाजतंत्र, तुलनीय-मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण, वाराणसी, पृ. 214-215
32. वही- पृष्ठ- 217, मानुषी बुद्ध बोधिसत्वों के मनुष्य रूपधारी प्रतिनिधि होते हैं, जो सामान्य मनुष्यों की तरह जन्म लेकर अपना कार्य संपादित करते हैं। अधिकतम 32 मानुषी बुद्धों के नाम मिले हैं, लेकिन सात मानुषी बुद्ध ही मुख्य हैं- **विपश्ची, शिखी, विश्वभू, क्रुकुच्छंद, कनकमुनि, कश्यप एवं शाक्य सिंह** (गौतम बुद्ध) है। **मत्रेय** भविष्य में होने वाले मानुषी बुद्ध हैं।
33. महावस्तु-अवदान, साधनमाला में अधिकतम 108 मिलते हैं।
34. आर्यमंजु श्रीमूलकल्प एवं गुह्यसमाज तंत्र -मंजुश्री संभवतः कोई ऐतिहासिक व्यक्ति थे।
35. साधनमाला ग्रंथ में तारा के पाँच रूपों का उल्लेख है- **श्वेत तारा, हरिततारा, पीत तारा, नील तारा, रक्ततारा।**
36. गुप्त, परमेश्वरी लाल -प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग-2, वाराणसी, 1983 क्रमशः 129-30, 148-50, 205
37. दुबे, सीताराम-पूर्वोक्त, पृष्ठ-304
38 गुप्त, परमेश्वरी लाल- पूर्वोक्त, पृ.- 143-44
39. जैन, बालचंद्र-उत्कीर्ण लेख, रायपुर, 1961, पृष्ठ-28-36
40. बाजपेयी, कृष्णदत्त, आदि ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख, पृष्ठ- 222-227
41. देवपाल देव का घोषदवॉ अभिलेख, एपिग्रापिका इंडिका, खंड-17 पृ-. 309
42. देवपाल का हिल्सा प्रतिमा लेख, मेमायर ऑफ दी आर्क्यालॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, खंड-66, 1942 पृष्ठ-88
43. नारायणपाल का भागलपुर लेख, इपिग्रापिका इंडिया, खंड -15, पृष्ठ-305
44. देवपाल का नालंदा ताम्रपत्र, मेमायर ऑफ दी आर्क्यालॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, खंड -66, 1942 पृष्ठ-99

संगीतकार उस्ताद रहीम फहीमुद्दीन डागर से ध्रुपद गायकी पर बातचीत

● उमाकांत खुबालकर

परिचय- उस्ताद रहीम फहीमुद्दीन खान डागर ध्रुपद के ख्यातनाम गायक एवं संगीतकार हैं। पदम् विभूषण उस्ताद अल्लाबंद रहीमुद्दीन खान डागर के एकमात्र जीवित पुत्र उस्ताद फहीमुद्दीन डागर का जन्म सन् 1927 में अलवर (राजस्थान) में हुआ था। उ.र.फ. डागर ने लगभग 35 वर्ष से ज्यादा की अवधि तक अपने पिता से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। 14 वर्ष निरंतर एकाग्रचित्त होकर स्वर-प्रवाह के 52 अलंकारों की भौतिक साधना की। अपने चाचा, उस्ताद जियाउद्दीन खान डागर के मार्गदर्शन में 'रूद्रवीणा' बजाने का लगातार 12 वर्ष तक अभ्यास किया। उ.र.फ. डागर अपनी गायकी के 'आलाप' की सिद्धहस्तता के साथ-साथ सौम्यता एवं शालीनता के सहज बर्ताव से बरबस दूसरों का ध्यान खींच लेते है। अपने संगीत कार्यक्रमों के आयोजनों के सिलसिले में श्री डागर यू. एस. ए. फ्रांस, जर्मनी की यात्रा करके विदेशियों का भी दिल जीत चुके हैं। इनकी रिकार्डिंग्स स्विट्जरलैंड, जर्मनी एवं इटली में रिलीज हो चुकी हैं। 'सूफीयाना' शैली में ईश्वरोपासना करने वाले इस महान

● सहायक निदेशक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, पश्चिमी खंड-7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली-110022

कलाकार को चौदह से भी ज्यादा राष्ट्रीय सम्मान/पुरुस्कार प्राप्त हो चुके हैं। आर. के. पुरम्, नई दिल्ली स्थित उनके निवास पर की गई बातचीत के अंश यहाँ प्रस्तुत हैं।

प्रश्न-ध्रुपद शास्त्रीय गायन शैली है, परंपरा है या घराना?

उत्तर-बेशक शास्त्रीय गायन शैली है, परंपरा इस तरह है कि दूर से चली आ रही है। इसके उद्‌भव के समय भारत में छंद, प्रबंध, मठ शैलियाँ भी प्रचालित थीं। समय के साथ-साथ ज्ञानी, तपस्वी, विद्‌वान, इससे जुड़ते चले गए। वक्त की जरूरत महसूस करते हुए इसमें सुधार किए गए और शिक्षा के काबिल बनाया गया ताकि यह परंपरा आगे भी कायम रहे। ध्रुपद शैली यूँ तो बारहवीं शताब्दी की देन है। इसमें बड़े-बड़े गंधर्व, गुणी जनों का योगदान है। यह परिमार्जित एवं परिष्कृत शैली है। नाद-योग है। इसमें नव चक्र हैं। नाद भ्रमण करता है, योग जोड़ता है। यह वैज्ञानिक विधि से शिक्षकों को ''वाइस कल्चर'' की सीख देता है। किस तरह इसको भारतीय विद्‌याओं में अपनाया गया, किन नियमों के अंतर्गत स्थापनाएँ की गईं चूँकि संगीत की जरूरत इंसान के पैदा होते ही महसूस की गई। जहाँ तक घराने की बात है, घराने वह कहलाते हैं जिनकी 'नस्ल-दर-नस्ल' बुनियादों को रखते हैं। ऐसी बात नहीं, घराने समय के साथ बने और बिगड़े भी। अभी इक्कीसवीं शताब्दी का दौर चल रहा है। यह वक्त ही तय करेगा कि कौन महापुरुष इसकी हिफाजत करेगा? वे ही लोग कला, विद्‌या की परंपरा को आगे बढ़ाते हैं। जीवित रखते हैं। ईश्वर ने क्या कहा? धर्म बतलाता है। ॐ का उच्चारण विशाल है, अनहद है। यह त्रिगुणात्मक है, ॐ वर्णात्मक, लयात्मक, आवाज नादात्मक है। समग्र ब्रह्‌मांड लयात्मक है। यह विज्ञान ने प्रमाणित कर दिखाया है। जो हासिल करना चाहता है, वैसे ही होता है।

प्रश्न- ध्रुपद का संक्षिप्त इतिहास बताइए।

उत्तर- ध्रुपद का अर्थ है अटल पद। ध्रुव तारे जैसा अटल सिद्‌धांत परंतु कविता छंदोबद्‌ध है।

1. इसका परिक्षेत्र अत्यंत विशाल है इसमें पूरी की पूरी हिंदू संस्कृति व्याख्यायित होती है। संगीत उदात्त उपासना का मार्ग है क्योंकि वैष्णव धर्म आवागमन को मानता है। बारबार आता जाता रहेगा। ईश्वर लीला को

जन्म देता है अत: ऐसा उपाय करने की जरूरत है कि सबका उद्‌धार हो जाए। जानते हैं आप? संगीत की शिक्षा के लिए नारद अवतरित हुए। ध्वनि को मापने, मूल्यांकित करने के लिए 'तुंबोरा' (तुंब माने घोड़े जैसा मुंह) तानपुरा अपभ्रंश बना है। तुंबोरा को आधार बनाकर, संगीतात्मक बनाने की कोशिश की गई। नांद के पीछे भेद छिपा हुआ है। समूचे ब्रह्‌मांड में ईश्वरीय नाद भ्रमण कर रहा है। (हर आवाज नहीं?) मनुष्य की आवाज के माध्यम से उस नाद को समझा जाता है। नारद ने संगीत की शिक्षा के साथ सिस्टम भी दिया ताकि नाद से ब्रह्‌म की तलाश कर सकें। ईश्वर, की याद निष्पक्ष रूप से कर सकें। और सबको भूल जाएँ। कोई ईश्वर को याद करेगा तो मनुष्यजनित बुराइयों से दूर रहेगा। तपस्वियों ने दुनिया को त्याग दिया ताकि ईश्वर को याद रख सकें। जो सांसारिकता में फंस जाता है एकाग्र नहीं कर पाता है चित्त को। दुनियादारी का चिंतन आ जाता है परंतु संगीत एक ऐसा माध्यम है जहाँ इंसान थोड़ी देर के लिए दुख-दर्द भूल जाता है। ईश्वर की याद में एकाग्रता मोक्ष का रास्ता बन जाता है। नाद को ब्रह्‌म रूप मानकर ईश्वर की उपासना बहुत बड़ी बात है। एकाग्रता से लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। लौकिकता-अलौकिकता दोनों मार्ग हैं। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि किस पर चलें? लौकिकता का मतलब आवारगी नहीं बल्कि अनुशासन तथा शुद्‌धता से पेश करना चाहते हैं या अशुद्‌धता से। कई संगीतकारों ने दौलत कमाने के लिए इसे अपनाया। राजाओं, महाराजाओं ने भी इसके द्‌वारा अय्याशी की। अत: यह भ्रष्ट हो गया। अशुद्‌ध बन गया। ईश्वर की याद उसमें से निकल गई। अलौकिकता का मार्ग उतना आसान नहीं है।

प्रश्न - ध्रुपद शैली में कौन-कौन से स्थापित कलाकार हुए हैं।

उत्तर- स्वामी हरिदास नागर, तानसेन, बाबा बैरम खां साहब, अदारंग-सदारंग, नायक बैजू, गोपाल, बक्शु, धेन्दू (सात नायक) इत्यादि कलाकार मानसिंह तोमर जैसे राजाओं के अलावा जौनपुर के जनाब अहमद हुसैन शरकी जैसे लोगों ने इसको आगे बढ़ाया।

प्रश्न- ध्रुपद गायकी में आपने कोई मौलिक उद्‌भावना प्रस्तुत की है।

उत्तर- इसमें नएपन का सवाल ही नहीं उठता। यहाँ नित नया है।

बिगाड़ नहीं है। यह अटल है। ईश्वर की देन है। इसमें परिवर्तन होते रहते हैं क्योंकि यह शैक्षिक विषय है। बंदिशों को गाने का मतलब है सिद्धांतों के साथ गाए शब्दों को गाने से काम नहीं चलता। यह शौक नहीं बल्कि जिम्मेवारी है संस्कृति एंव परंपरा बनाए रखने की।

प्रश्न- मीडिया एवं नए व्यावसायिक एलबमों की लोकप्रियता से श्रेष्ठ संगीत नष्ट होता जा रहा है। इससे आप कहाँ तक सहमत हैं?

उत्तर- श्रेष्ठ संगीत खत्म होने का सवाल ही पैदा नहीं होता है। नौजवान जिससे गुमराह हो रहे हैं वह शुद्धता नहीं आवारगी कर रही है। संस्कृति को बिगाड़ रही है। मेरा मानना है कि ये मौसमी मेंढक कम जिंदगी वाले हैं। सच्चा संगीत कभी मर नहीं सकता चूँकि यह धरती, आकाश जितना पुराना है।

प्रश्न- ध्रुपद परंपरा की ओर बढ़ने वाले नए कलाकारों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

उत्तर- यह एक महान सांस्कृतिक परंपरा है। यह शौक की चीज नहीं? गहन जिम्मेदारी की बात है। माँ जिस तरह से बच्चों को पालती है, देखभाल करती है इसी तरह कलाओं का संरक्षण करना चाहिए। यह शैक्षिक माध्यम है अत: मनन, चिंतन एवं समग्रता से डूबने की मंशा होनी चाहिए। सच्चे साधक की प्यास कभी नहीं बुझती। यह संगीत स्थायी आनंद की प्राप्ति के लिए है।

प्रश्न- भविष्य की आपकी क्या योजनाएँ हैं?

उत्तर- ध्रुपद के मनन, चिंतन में आकंठ डूबे हुए हैं। इस विषय के अलावा और कुछ नही सूझता। ध्रुपद कलात्मक, विद्यात्मक एवं आध्यात्मिक रूप में स्थापित हो। सत चित् आनंद की ऊँची मंजिल को प्राप्त करें। इसकी परंपरा व संस्कृति को बनाए रखने के लिए प्रतिभाओं को खोज जारी है।

प्रश्न- आज के बदलते हुए माहौल के बारे में आप क्या सोचते हैं?

उत्तर- निरंतर सामाजिक मूल्यों के ह्रास से आहत हूँ। मेरा कहना है, सत्यवान जैसा पात्र पूरी मानव जाति में है। कौन कह रहा है मत देखो? क्या क्या हो रहा है। उस पर विचार करो। गीता, कुरान में एक ही

बात लिखी हुई है। ज्ञान की खोज करने वाला हमेशा फायदे में रहता है। हर इंसान अपनी जुबान के नीचे छिपा हुआ है बोलेगा तब पता चल जाएगा। अगर मन की शांति चाहते हो तो उसे संगीत की तरफ मोड़ दो। धर्म, मजहब के नाम पर आतंक फैलाने वालों से मेरी गुजारिश है कि वे संगीत के नशे की आदत डाल लें। यह ऐसा नशा है कि उतरता ही नहीं? इससे स्वास्थ्य बनता है। विचारों में गंदगी नहीं आती।

प्रश्न- ध्रुपद गायकी के भविष्य को आप किस रूप में देखते हैं?

उत्तर- यह बिल्कुल सुरक्षित रहेगा। यह एक ऐसा चिराग है जो आँधी, तूफान से नहीं बुझता। यह स्थायी एवं शाश्वत संगीत है। वह ईश्वर इसे जीवित रखने वाला है। यह सत्य की तरह जीवित रहेगा। मृत्यु हमारे लिए है, सत्य की मृत्यु नहीं होती। यह सत्यवानों की वजह से अपना अस्तित्व कायम किए हुए है। यह डगमगाने वाला चिराग नहीं? सूर्य की तरह चमकने वाली कला एवं विद्या है ध्रुपद।

❑

कृषि एवं ग्रामीण विकास : समस्याएँ एवं समाधान

● डॉ. शिव कुमार सिंह

(भारत सदा कृषि प्रधान देश रहा है। धरती से सोना उगलाने वाले किसान को अन्नदाता मानने की परंपरा यहाँ रही है। किंतु विडंबना यह है कि औद्योगीकरण एवं शहरी विकास को वरीयता देने की प्रवृत्ति के कारण कृषि और ग्रामीण विकास की योजनाओं पर ध्यान नहीं दिया जाता। अनेक उपयोगी नीतियाँ एवं स्वीकृत कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में उपेक्षा और उदासीनता दिखाए जाने के कारण भारतीय किसानों की आर्थिक स्थिति दिनों दिन शोचनीय होती जा रही है और ग्रामीण विकास के ढाँचे में कोई सुधार नहीं हो पाता। इस लेख में समुचित आँकड़े देते हुए बारबार यह सवाल उठाया गया है कि औद्योगिक विकास के अनुरूप कृषि क्षेत्र और ग्रामीण विकास दर क्यों नहीं बढ़ रही है। साथ ही इस समस्या के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए उसके निवारण के उपाय भी सुझाए गए हैं।)

भारत की जनसंख्या का लगभग 69 प्रतिशत भाग कृषि कार्य में संलग्न है जो ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। भारतीय कृषि की समस्याएँ

● वरिष्ठ प्रवक्ता, पी. सी. बागला (पी.जी.) कालेज, हाथरस (उ.प्र.)

किसी से छिपी हुई नहीं हैं जिनका समाधान होने पर ही ग्रामीण विकास का रास्ता प्रशस्त हो सकता है। अगर हम यह कहें कि कृषि एवं ग्रामीण विकास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कृषि के विकास हेतु सरकार ने जो संकल्प लिए हैं वे अभी तक कागजों में सिमट कर रह गए हैं। सरकार ने कृषि विकास के लिए कृषि नीति एवं कृषक आयोग गठन जैसे महत्वपूर्ण कदम तो उठाए हैं, लेकिन व्यवहार में इनसे किसानों को कोई उल्लेखनीय लाभ नहीं मिल रहा है।

"विश्व में हो रहे परिवर्तनों को देखते हुए काफी समय से यह माँग उठाई जा रही है कि कृषि को अब पूर्ण उद्योग का दर्जा दिए जाने की आवश्यकता है; उसे केवल खेती मानना उचित नहीं है। हाल में केंद्रीय वित्त मंत्री पी. चिदंबरम् ने कहा कि औद्योगिक क्षेत्रों में हमने बेतहाशा वृद्धि की है, उद्योगों का विकास किया है जिससे औद्योगिकी विकास दर बढ़कर 14.5 प्रतिशत हो गई है। जब औद्योगिक विकास की दर इस उच्च स्तर पर लाई जा सकती है तो कृषि विकास की दर क्यों नहीं? आँकड़े यह बता रहे हैं कि आठवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास की दर 4 प्रतिशत से कम होकर नवीं पंचवर्षीय योजना में 2 प्रतिशत और 10वीं योजना में कम होकर यह 1.8 प्रतिशत के स्तर पर आ गई है, निश्चित रूप से यह तो मानना होगा कि जब औद्योगिक क्षेत्र का विकास 14.5 प्रतिशत तक लाया जा सकता है कृषि क्षेत्र इस विकास से वंचित क्यों रहे? जबकि सच्चाई यह है कि औद्योगिकी क्षेत्र कृषि क्षेत्र पर निर्भर है।

कृषि के लिए न तो ठोस योजना बनाई गई है न उसका क्रियान्वयन इस क्षेत्र में सही ढंग से हो पा रहा है। जब हम यह मान रहे हैं कि सकल राष्ट्रीय आय का 28 प्रतिशत हिस्सा कृषि से प्राप्त होता है, निश्चित रूप से कृषि क्षेत्र के विकास की महत्ता को स्पष्ट करता है, लेकिन कृषि विकास में अन्यान्य समस्याएँ निरंतर बनी रहती हैं। इनमें सिंचाई की समस्या भी प्रमुख स्थान रखती है। विडंबना यह है कि आज भी कृषि मानसून पर निर्भर करती है। जहाँ 1950-51 में कृषि के अधीन कुल क्षेत्रफल 13 करोड़ 19 लाख हेक्टेयर था इसमें से मात्र 2 करोड़ 19 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल ही सिंचित क्षेत्र के दायरे में था, हालाँकि वर्ष 1998-99 में कृषि के अधीन लगभग 19 करोड़ 26 लाख

हेक्टेयर क्षेत्रफल हो गया था जिसमें केवल 7 करोड़ 56 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल पर ही सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध थीं, अर्थात् 1998-99 में 61 प्रतिशत क्षेत्र मानसून पर निर्भर था। इससे सिद्ध होता है कि भारत में कृषि उत्पादन का स्तर निर्धारित करने में आज भी प्रकृति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।[1]

1965 के बाद उन्नत किस्म के बीजों का जो कार्यक्रम अपनाया गया है उससे उत्पादन की वर्षा पर निर्भरता (गेहूँ को छोड़कर) और अधिक बढ़ गई है। सी. एच. हनुमंतराव, एस. के. रे. तथा के. सुब्बाराव ने 1959-1985 तक की अवधि के लिए जो अध्ययन किया वह सिद्ध करता है कि खाद्यान्नों के कुल उत्पादन की संवेदनशीलता वर्षा में होने वाली कमीबेशी के प्रति अधिक बढ़ गई है।[2] अगर स्वाधीनता-पूर्व के भारत से लेकर आज तक का अध्ययन किया जाए तो कुछ मुद्दों को छोड़कर अभी तक हम कृषि में ऐतिहासिक वृद्धि नहीं कर पाए हैं। अर्थव्यवस्था के अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ हमने अवश्य ही उपलब्धि हासिल की है लेकिन कृषि अभी भी इससे अछूता है। इसका प्रमुख कारण हमारी विपन्न ग्रामीण स्थिति है जो प्रकृति पर निर्भर रहने के लिए अभिशप्त है और कृषि विकास न होने के अनेक कारण हैं जैसे-

1. सिंचाई का अभाव।
2. कृषि का मानसून पर निर्भर होना।
3. बिजली की समस्या।
4. समय पर खाद, उर्वरक, बीज का उपलब्ध न होना।
5. किसान का अशिक्षित होना।
6. मानवीय आधारभूत आवश्यकताओं का अभाव।
7. सरकारी कार्यकलापों एवं अधिकारियों का असहयोग।
8. छिपी बेरोजगारी।
9. फसलों के उचित भंडारण का अभाव।
10. कृषि सब्सिडी का अभाव।
11. कृषि निवेश की समस्या।
12. अनियमित मंडियाँ एवं अनियमित बाजार।
13. साहूकारी प्रथा।
14. कृषि श्रमिकों का जीवन स्तर एवं उत्पादकता कम होना।

15. कृषि मंडी की अनियमितता।
16. जनसंख्या वृद्धि।

स्वतंत्रता के बाद यद्यपि सरकार ने कृषि एवं ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रम चलाए हैं जिनके कुछ हद तक परिणाम हमारे सामने आए हैं लेकिन ग्रामीण विकास में बहुत-सी व्यावहारिक समस्याएँ आज भी विद्यमान हैं जैसे- अशिक्षा, गरीबी, जनसंख्या वृद्धि, जनकल्याण योजनाओं का अभाव, संचार साधनों की समस्या, रूढ़िवादिता एवं परंपराएँ, कुप्रथाएँ, ऋणग्रस्तता, बेरोजगारी की समस्या, निम्न जीवन स्तर, आदि समस्याओं ने ग्रामीण विकास को अवरुद्ध किया है हालांकि सरकारी कार्यक्रम इनको दूर करने के लिए अवश्य अपनाए गए हैं लेकिन यह उपाय या तो व्यावहारिक रूप नहीं ले सके हैं या फिर निचले स्तर तक इनका लाभ पहुँच पाना संभव नही हुआ है। अत: इन समस्याओं के निवारण के लिए सरकार को निचले स्तर पर जाकर कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करने की आवश्यकता है। यदि सरकारी कर्मचारी एवं अधिकारी की जबावदेही तय कर दी जाए तो कोई ऐसा कारण नहीं कि ग्रामीण विकास को उच्च स्तर पर नहीं लाया जा सके। कार्यक्रमों के प्रचार-प्रसार में लगे व्यक्तियों की सोच को सकारात्मक बनाने की आवश्यकता है। अगर हमने सरकारी कार्यक्रमों को निचले स्तर पर क्रियान्वित करने की कार्यवाही पूरी कर ली तो वह दिन दूर नहीं कि राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से जुड़ेगा, असमानता कम होगी, शिक्षा का स्तर बढ़ेगा, रोजगार में वृद्धि होगी और व्यक्ति व समाज का जीवन स्तर सुधरेगा तथा संपूर्ण राष्ट्र विकास की ओर अग्रसर होगा तथा भारत विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में गिना जाएगा।

कृषि विकास हेतु भारत सरकार की नीति में इंडिया-2020 विजन में पंचवषीय योजनाओं को केंद्रीय सूची, समवर्ती सूची एवं राज्य सूची में प्राथमिकता के तौर पर अन्य उद्योगों के सदृश कृषि निवेश की प्राथमिकता भी सुनिश्चित की जाए। इसी परिप्रेक्ष्य ने भारत सरकार नें कृषि की समस्याओं से निजात पाने के लिए राष्ट्रीय कृषि नीति एवं राष्ट्रीय कृषक आयोग का गठन किया है।

केंद्र सरकार ने 28 जुलाई, 2000 को नई राष्ट्रीय कृषि नीति को रूप दिया था जिसमें कृषि विकास दर 4 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य

था जो अभी तक प्राप्त नही हो सका है। इसका तात्पर्य यह है कि हमारे कार्यक्रमों का क्रियान्वयन ठीक से नहीं हो सका है। वास्तव में इस नीति में विश्व के व्यापार संगठन के प्रावधानों के तहत ठेका खेती करने के पीछे सरकार की मंशा कृषि को निजी हाथों में देने की है जिससे वैश्वीकरण के युग में भारतीय कृषि को कोई लाभ मिलने वाला नहीं है। 4 प्रतिशत विकास दर कल्पना-सी लगती है क्योंकि 2005 तक कृषि की विकास दर 1.84 प्रतिशत आँकी गई है। यह ठीक ऐसा ही उदाहरण है "जल बीच मीन प्यासी" अर्थात् सरकारी आँकड़े आत्मनिर्भरता और खाद्यान भंडार की बात कर रहे हैं वहीं दूसरी ओर लोग भूख से मर रहे हैं। कृषि में निजी निवेश बढ़ाना बहुत कठिन है। किसानों को सरकारी निवेश पर ही निर्भर रहना पड़ता है जो लगातार घट रहा है। कृषि सब्सिडी का सीधा लाभ किसान को नहीं मिल पा रहा है। ठेका खेती का तात्पर्य फिर से पूँजीवादी प्रणाली को जन्म देना है। इससे बेरोजगारी बढ़ेगी और इस नीति में कृषि उत्पादों को उचित मूल्य देने, विश्व व्यापार संगठन द्वारा किसानों को संरक्षण प्रदान कराने, किसानों को कर्ज से मुक्ति प्रदान करने आदि के संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया है।

अत: यदि सरकार कृषि नीति के साथ-साथ किसानों को विनाश से बचाने, आत्महत्या करने से रोकने, रोजगार बढ़ाने तथा सर्वांगीण ग्रामीण विकास के लिए कटिबद्ध है तो निम्न कदम तत्काल उठाए जाने हैं–

1. कृषि क्षेत्र तथा घरेलू खपत के लिए संपूर्ण खाद्य उत्पादों को विश्व व्यापार संगठन की समस्याओं की परिधि के बाहर रखा जाए अथवा उसके प्रतिबंधों को नजर अंदाज किया जाए।
2. किसानों को मिलने वाली सब्सिडी में कोई कमी न की जाए।
3. बहुराष्ट्रीय कंपनियों को कृषि योग्य भूमि को पट्टे पर लेने से रोका जाए।
4. कृषि उपज के लिए लाभकारी मूल्य सुनिश्चित किया जाए।
5. रासायानिक खादों के स्थान पर जैविक खादों को प्रोत्साहित किया जाए।
6. किसानों को अत्यधिक कर्ज से मुक्ति के लिए उन्हें कुछ न कुछ छूट प्रदान की जाए। वह भले ही कम ब्याज के रूप में हो।
7. धारणीय विकास को प्रभावी बनाया जाए।

8. कृषि योजनाओं के साथ-साथ ग्रामीण कार्यक्रमों से भी जनता को अवगत कराया जाए ।
9. ग्रामीण कार्यक्रम गाँव-गाँव जाकर प्रचलित व प्रसारित किए जाएँ।
10. किसान को शिक्षित करने के विभिन्न कार्यक्रम चलाए जाएँ।
11. ग्रामीण जनता की भौतिक एवं आधारभूत सुविधाओं को उनके निचले स्तर पर क्रियान्वित किया जाए।
12. संचार कार्यक्रम एवं जनकल्याण कार्यक्रम चलाए जाएँ।
13. सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों को सहयोगात्मक भावना रखने के लिए प्रेरित किया जाए ।
14. अच्छे किसानों को प्रोत्साहित किया जाए।
15. कृषि संबंधी मामलों में स्थानीय पंचायतों के अधिकारों में वृद्धि की जाए।
16. सूखे एवं वर्षा संबंधी जोखिमों से बचने के लिए एग्रीकल्चर रिस्क फंड बनाया जाए।

इस प्रकार भारतीय कृषि एवं ग्रामीण विकास की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए उनमें सुधार के प्रभावी कदम उठाएँ जाएँ तभी कृषि विकास एवं ग्रामीण विकास की कल्पना को साकार किया जा सकेगा और भारत को आने वाले वर्षों में विकसित राष्ट्र की श्रेणी में गिना जा सकेगा। इसके लिए हम सभी को जनभावना के साथ कार्य करने की भी आवश्यकता है साथ ही आज के बढ़ते हुए तापमान में मुख्य फसलों की उत्पादकता में कमी हो रही है, जिसका कारण विश्व का बढ़ता हुआ तापमान है। विश्व में आने वाला समय खाद्यान संकट की दस्तक देने वाला है। ऐसे में गेहूँ का उत्पादन भारत में विशेष रूप से कम होता जा रहा है। आज देश में ऐसे बीजों का आविष्कार करना है जो तापमान को ध्यान में रख कर तैयार किए जाएँ।

❑

संदर्भ ग्रांथ-सूची

1. 'भारतीय अर्थव्यवस्था'–मिश्र एवं पुरी हिमालय परिषदीय हाउस, नई दिल्ली, पृ.सं. 284
2. सी.एच. हनुमंतराव, शशांक के. रे, के. सुब्बाराव–अनस्टेबल एग्रीकल्चर एंड ड्रॉट्स, नई दिल्ली (1998) पृष्ठ 29

सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी

● डॉ. गिरीश काशिद

[इलैक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी ने संचार क्रांति उत्पन्न कर संपूर्ण विश्व को 'ग्लोबल विलेज' में परिवर्तित कर दिया है। इसने संचार व्यवस्था, व्यापार, उत्पादन, मनोरंजन, शिक्षा, संस्कृति, अनुसंधान, राष्ट्रीय रक्षा, चिकित्सा, वाणिज्य, वित्त आदि को प्रभावित किया है। उसकी उपेक्षा, उससे पलायन करना अपने आपको शेष दुनिया से अलग कर लेना है। भाषा और सूचना प्रौद्योगिकी में गहरा रिश्ता है। प्रौद्योगिकी की सहायता से भाषा फल-फूल सकती है। हिंदी के संदर्भ में यह एक सुनहरा अवसर है जो हिंदी को 'विश्व भाषा' के रूप में स्थापित करेगा। आवश्यकता है तो इसे निष्ठा के साथ प्रयुक्त करने की। हिंदी में काम करने हेतु आज बाजार में अनेक साफ्टवेयर उपलब्ध हैं। सी-डेक, मंत्र आदि इसके उदाहरण हैं। सूचना प्रौद्योगिकी अंग्रेजी के माध्यम से पैर फैलाए, उससे पूर्व उसे हमें हिंदी से जोड़ना होगा। बाजारवाद पर हिंदी का वर्चस्व बढ़ाना होगा।]

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास के कारण समूचे विश्व में निरंतर परिवर्तन हो रहा है। इलैक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी ने संचार क्रांति उत्पन्न कर संपूर्ण विश्व को 'ग्लोबल विलेज' में परिवर्तित किया है।

● वरिष्ठ व्याख्याता, हिंदी विभाग, महावीर महाविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)।

तकनीकी क्षेत्र में होने वाली निरंतर प्रगति के चलते नई-नई उपलब्धियाँ सामने आ रही हैं। विश्वव्यापी नए संदेशवाहकों ने संचार प्रौद्योगिकी में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। जनसंचार माध्यम वर्तमान में आवश्यक ही नहीं तो समाज के नियामक बन गए हैं, जैसे कि वे जनता, समाज, राष्ट्र और विश्व के सजग प्रहरी हैं। इन्होंने पूरे विश्व को एक परिवार सदृश्य प्रस्तुत किया है। जीवन के हर क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव और हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है। सूचना के मुक्त प्रवाह ने ज्ञान के क्षेत्र में अद्‌भुत उपलब्धियाँ प्रदान की हैं जिनसे पूरा संसार चमत्कृत हुआ है। इसने भौगोलिक दूरियों को पाट दिया है। मानव सभ्यता के सर्वश्रेष्ठ माध्यम भाषा, साहित्य एवं संस्कृति भी इससे अछूते नहीं रहे हैं।

'सूचना प्रौद्योगिकी' एक निरंतर गतिशील प्रक्रिया है। इसने प्रगति एवं विकास के नए आयाम प्रस्तुत किए हैं। इसने तीव्र गति से विज्ञान से भी ज्यादा मनुष्य समाज को प्रभावित किया है। इसने संचार व्यवस्था, व्यापार, मनोरंजन, शिक्षा, संस्कृति, अनुसंधान, राष्ट्रीय रक्षा, चिकित्सा, वाणिज्य, वित्त आदि तमाम क्षेत्रों को प्रभावित कर स्थिरता में चंचलता उत्पन्न की है। इसमें नित नए आयाम जुड़ रहे हैं। भविष्य में इसमें कौन-कौन से आयाम जुड़ जाएँगे यह बताना असंभव है। इसकी गति अत्यंत तीव्र है। "औद्योगिक क्रांति को जनमानस के जीवन तक पहुँचने में चार दशक लगे थे, लेकिन कंप्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी को आम लोगों के जीवन तक पहुँचने में केवल आधा दशक ही लगा और आज यह परिवर्तन हर छह माह में दिखाई देने लगा है।"[1] इसी के चलते कल का औद्योगिक समाज आज सूचना समाज में परिवर्तित हो गया है। मूलतः सूचना एक शक्ति है। आज के युग में जिसके पास अद्‌यतन सूचना है वही शक्तिशाली माना जा रहा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सूचना प्रौद्योगिकी कंप्यूटर, संचार माध्यम और इलैक्ट्रॉनिकी का समन्वित रूप है। इसके माध्यम से सूचना प्रणाली के विविध आयाम उजागर हो रहे हैं। इसके अंदर न केवल कोरी जानकारी है अपितु गरीबी, स्वास्थ्य, विषमता, अज्ञान, भ्रष्टाचार को दूर करने की भी क्षमता है जो ई-प्रशासन साबित कर रहा है।

सूचना प्रौद्योगिकी की दृष्टि से भारत एशिया के बड़े नेटवर्कों में से एक है। सूचना प्रौद्योगिकी के बहाव में भारत की भूमिका महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में अनेक संभावनाएँ है। भारत ने कंप्यूटर नीति, इलैक्ट्रॉनिक नीति, साफ्टवेअर नीति के तहत इस क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है इसके बावजूद वह विकसित देशों की तुलना में कम है। मूलभूत अनुसंधान का अभाव और नई संचार प्रौद्योगिकी का महँगा होना भी इसका कारण है। संचार प्रौद्योगिकी के विकास में किसी भी देश को स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाकर तीव्र गति से प्राथमिकता का निर्धारण करना आवश्यक है। सूचना प्रौद्योगिकी भारत में तीव्र गति से विकसित होनेवाला वह औद्योगिक रूप है जिसने सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। इंटरनेट और वर्ल्ड वाइड वेब के संवर्धन ने भारतीय जीवन और परस्पर संवादपरक व्यवहार में परिवर्तन आया है। सूचना और संचार के बढ़ते महत्व ने एक जागृति और चेतना का भाव जगा दिया है। विश्व आर्थिक व्यवस्था में नित नए परिवर्तन हो रहे हैं और जिससे हम स्वयं को अलग रख ही नहीं सकते। "बैंकिग क्षेत्र हो या वित्तीय क्षेत्र हो, चाहे सरकारी क्षेत्र हो या निजी क्षेत्र कंप्यूटर और सूचना तकनीक की अनदेखी नहीं हो सकती है। उसकी उपेक्षा, उससे पलायन करना अथवा उससे घबराने का अर्थ शेष दुनिया से अपने को अलग रखना है।"[2] अत: राजभाषा हिंदी के माध्यम इसे जन-जन तक पहुँचाना आज की आवश्यकता है। आज सूचना प्रौद्योगिकी से समृदध राष्ट्र ही चहुँमुखी उन्नति कर रहा है। पूरे विश्व में कंप्यूटरयुक्त तकनीक और अन्य संचार साधनों के रूप में संचार प्रौद्योगिकी दैनंदिन व्यवहार में अनिवार्य आवश्यकता के रूप में उभर रही है। इससे स्वयं को अलग रखने का अर्थ है पिछड़ जाना। अत: इसको अपने परिवेश के अनुरूप ढालना आवश्यक है।

भाषा और सूचना प्रौद्योगिकी में गहरा रिस्ता है। वैसे आज सूचना प्रौद्योगिकी भाषा के सवालों के ऊपर उठी है। लेकिन भाषा का अपना महत्व एवं अस्तित्व है। सूचना प्रौद्योगिकी पर किसी का कब्जा हो सकता है लेकिन भाषा पर नहीं। जनसंचार माध्यम भाषा के बिना गूँगे हो जाएँगे। जनसंचार वाचिक हो या कायिक वह हर हाल में भाषागत होता है। भाषा समाज से अविच्छिन्न है। सूचना प्रौद्योगिकी समाज के लिए है

अत: बिना भाषा के उसका विकास असंभव है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का स्वरूप ग्लोबल है। अत: उसे पुष्ट करनेवाली भाषा को बदलेगा जरूर। साथ ही उसका विस्तार भी करेगा। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अंग्रेजी का वर्चस्व है। 90 प्रतिशत से अधिक सूचनाएँ अंग्रेजी में होती हैं। इसका अर्थ यह भी नहीं कि अन्य भाषाओं से उसे परहेज है। जर्मनी, जापान, फ्रांस, चीन आदि देशों ने अपनी राष्ट्रभाषा में इसमें तेजी के साथ प्रगति की है। अपनी भाषा में वेबसाइट का निर्माण किया है। प्रौद्योगिकी की सहायता से भाषा फल-फूल सकती है। सूचना प्रौद्योगिकी ने नई भाषा गढ़ने को विवश किया है। हिंदी के संदर्भ में यह एक सुनहरा अवसर है जो हिंदी को 'विश्वभाषा' के रूप में स्थापित करेगा। सूचना क्रांति से उत्पन्न नई चेतना ने भाषा के क्षेत्र में नए सफल एवं तीव्रगामी आयाम प्रदान किए हैं। वैज्ञानिक एवं साहित्यिक बुद्धीजीवियों के प्रयासों से भारतीय भाषाएँ नई सहस्त्राब्दि में विदेशी भाषा के समानंतर प्रगति कर रही है। इसमें और प्रयासों की आवश्यकता है। "सूचना समाज के संप्रेषण रूपों एवं भाषिक संरचना को अक्षुण्ण बनाए रखने संबंधी तथ्य को किसी भी तरह से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।"[3] सूचना प्रौद्योगिकी का संबंध सामाजिक विकास और जनकल्याण के उद्देश्यों के साथ जुड़ा है। अत: भारत के संदर्भ में टेक्नॉलॉजी का विस्तार सभी को सुलभ करने के लिए भाषा का स्थानीकरण आवश्यक है। सूचना प्रौद्योगिकी ने भाषा के सामने अनेक चुनौतियाँ खड़ी की हैं। हमारे वैज्ञानिकों के प्रयासों ने यह साबित किया है कि हिंदी में इन चुनौतियों का मुकाबला करने की सामर्थ्य है। इसे कारगार बनाने के लिए अनुसंधान के साथ ही मानसिकता में परिवर्तन आवश्यक है। सूचना प्रौद्योगिकी को लेकर भारत के संदर्भ में भाषा एक महत्वपूर्ण आयाम है। अत: सूचना प्रौद्योगिकी पर विचार एवं भारत में उसके विकास की बात करते समय भाषा को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। दूसरे, भारत में विभिन्न भाषाएँ प्रयुक्त होती हैं। इनकी अपनी अर्थवत्ता भी है। विभिन्न देशों ने कंप्यूटर के लिए अपनी भाषाएँ विकसित की है। मूलत: कंप्यूटर एक उपकरण है। कोई भी भाषा या लिपि अपनाने में उसे कोई बाधा नहीं "भारतीय भाषाएँ विश्व की अनेक भाषाओं की तुलना में वाक्य विज्ञान,

ध्वनि विज्ञान और रैखिक दृष्टि से अधिक सुनियोजित है।"[4] अर्थात् यदि आवश्यकता है तो इसे निष्ठा के साथ प्रयुक्त करने की। हिंदी भारत की जनभाषा और संपर्कभाषा है। इसे देश का आम आदमी समझ सकता है। यदि सूचना प्रौद्योगिकी को आम आदमी तक पहुँचना है तो वह वर्तमान स्थिति में तो हिंदी के ही माध्यम से संभव है। "यदि हम सूचना प्रौद्योगिकी को जड़ों तक पहुँचना चाहते हैं तो निरंतर खोज करनी होगी और जमीन तोड़ने का काम करना होगा। यदि हिंदी अंग्रेजी के साथ टिक न सकी तो वह नि:शून्य हो जाएगी।"[5]

हिंदी एक सर्वगुण संपन्न भाषा है। सूचना प्रौद्योगिकी के चलते वह 'विश्वभाषा' के रूप में विकसित हो रही है। एक तरह से सूचना प्रौद्योगिकी ने हिंदी को विकास एवं विस्तार का सुनहरा अवसर ही प्रदान किया है। डॉ. पूरन चंद टंडन के शब्दों में, "सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का एक बहुत बड़ा लाभ हिंदी को मिला है और वह है अंतर्राष्ट्रीय मंच पर हिंदी का व्यापक स्तर पर अवतरण। इससे पहले यह महत्वपूर्ण कार्य हिंदी सिनेमा कर रहा था किंतु दूरदर्शन, रेडियो, केबल, इंटरनेट, ई-मेल, पेजर, सैलुलर आदि ने इस दिशा में गंभीर एवं सकारात्मक भूमिका निभाई है।"[6] इसी के चलते हिंदी इस क्षेत्र में अहं भूमिका निभा रही है। हिंदी में काम करने हेतु आज बाजार में अनेक सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं। विभिन्न क्षेत्रों में कंप्यूटर का सफल प्रवेश हो चुका है। बिल गेट्स द्वारा विंडोज का संस्करण हिंदी में निकालने की जो पहल हुई उसके पीछे हिंदी का विशाल बाजार एवं संस्कृत और हिंदी की वैज्ञानिकता प्रमुख कारक हैं। राजभाषा विभाग ने राजभाषा नीति के तहत महत्वपूर्ण कार्य किया है। माइक्रोसॉफ्ट कंपनी, सी-डैक तथा आई.बी.एम डाटा ने इस क्षेत्र में रचनात्मक भूमिका निभाई है। राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र तथा ई. आर. एंड डी.सी. आई. नोएडा ने हिंदी भाषा के परिप्रेक्ष्य में कंप्यूटर में दुर्लभ कार्य किया है। सुपरटेक सॉफ्टवेयर एंड हार्डवेयर ने अनुवाद सॉफ्टवेयर का विकास किया है।

यद्यपि कंप्यूटर का विकास विदेश में हुआ है लेकिन बाद में इस क्षेत्र में भारतीय कंप्यूटर शास्त्रियों ने उल्लेखनीय योगदान किया है। भारतीय वैज्ञानिकों ने व प्रौद्योगिकी संस्थानों ने इस क्षेत्र में काफी काम

किया है। विदेशी कंपनियों के लिए ढेर सारा काम भारतीय ही कर रहे हैं। हाल ही में देश के सूचना तंत्र पर लगातार हो रहे हमले से त्रस्त रक्षा मंत्रालय ने आई आई टी, चैन्नई की मदद से संवेदनशील सूचना उपकरणों का देश में निर्माण करने में सफलता प्राप्त की है। सी-डैक, पुणे ने तो इस दिशा में क्रांतिकारी शोध किया है। राजभाषा विभाग, (तकनीकी कक्ष), गृह मंत्रालय, नेटकॉम इंडिया तथा अन्य कंप्यूटर संस्थानों ने हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा दिया है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, सूचना प्रौद्योगिकी विभाग, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, अंतर्राष्ट्रीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, केंद्रीय हिंदी संस्थान आदि इसमें सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। अनेक गैर सरकारी संस्थाएँ हिंदी सॉफ्टवेयर निर्माण में सक्रिय हैं। इसी के चलते हिंदी में पेजर, इंटरनेट, ई-मेल, सर्च, पोर्टल की सुविधा हो गई है।

आज हिंदी में डॉस, यूनिक्स और विंडोज वातावरण में शब्द संसाधन का कार्य करने के लिए जिस्ट कार्ड, जिस्ट शैली, एलएलपी, लीप ऑफिस, शब्दरत्न, अक्षर फॉर विंडोज, सुलिपि, सुविंडो, आकृति, प्रकाशक आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। भारत की प्रमुख संस्थाओं ने डॉस परिवेश के अंतर्गत शब्द संसाधन पैकेज विकसित किए है। सी-डेक ने जिस्ट कार्ड के साथ ही हिंदी और मराठी में मल्टीमेल सुविधा उपलब्ध कराई है। साथ ही 'मंत्र' जैसी स्वचालित मशीन अनुवाद प्रणाली विकसित की है। 'विंडोज' आम आदमी का मित्र बन रहा है। भारतीय भाषाओं में विकसित विभिन्न 'इंटरफेस' में 'लीप ऑफिस', 'इज्म ऑफिस', 'ऑफिस 2000' आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। हिंदी में 'डॉस' का आ जाना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। सरकारी और निजी संस्थाओं के प्रयासों ने हिंदी को सूचना प्रौद्योगिकी की भाषा बना दिया है। इसी कारण हिंदी सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न आयामों से जुड़ रही है। प्रिंट मीडिया तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में बहुमुखी प्रगति हुई है। आज हिंदी में शब्द संसाधन, अंक संसाधन, प्रोग्रामिंग, नेटवर्किंग और प्रशिक्षण का कार्य सफलतापूर्वक हो रहा है। अब आवश्यकता गहन अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी के विस्तार की है। देश को विकास की ओर अग्रेषित करने में सूचना प्रौद्योगिकी अहं भूमिका निभाएगी इसमें संदेह नहीं।

'इंटरनेट' के रूप में सूचना प्रौद्योगिकी का एक विराट रूप सामने आया है। इससे मानों सूचना-तंत्र मानव की मुट्ठी में आया है और पूरा विश्व हथेली पर। यह सक्षम और तेज सूचना संवाहक इलेक्ट्रॉनिक संचार युग का सर्वाधिक विस्मयकारी रूप है। इंटरनेट पर अंग्रेजी प्रमुख भाषा है लेकिन हिंदी भी यहाँ प्रयुक्त हो रही है। वेब-दुनिया, रीडिफ, राजभाषा जैसे वेबसाइट हिंदी में विकसित हुए हैं। हिंदी में 'ई-मेल' की सुविधा भी मुहैया हो गई है। इसके माध्यम से हमें अविलंब खबरें, विज्ञापन, शेयर बाजार, शिक्षा, मौसम, पर्यटन, साहित्य, संस्कृति आदि विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी अविलंब उपलब्ध हो रही है। दूसरी ओर इसका गलत प्रयोग भी हो रहा है। हाल ही में गूगल पर हर देश के महत्वपूर्ण नक्शों का उपलब्ध होना, विवाद का विषय बन गया है। इंटरनेट पर अंग्रेजी को अब चीनी, जापानी, स्पेनिश, जर्मन, फ्रेंच, कोरियन और गैर अंग्रेजी भाषाओं से चुनौती मिलने लगी है।

हिंदी ने सूचना, मनोरंजन और संचार से जुड़े लगभग सभी क्षेत्रों में मजबूती से पैर जमाए हैं। आईटी क्षेत्र की दिग्गज कंपनियों ने विभिन्न हिंदी परियोजनाएँ शुरू की हैं। भले ही इसके पीछे व्यावसायिक विवशता हो। मूलत: हिंदी और भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी को पीछे छोड़ने की क्षमता है। अंग्रेजी आधारित उत्पादों का बाजार धीरे-धीरे ठहराव पर पहुँच रहा है तो गैर अंग्रेजी भाषाओं की आर्थिक स्थिति सुधर रही है। बावजूद इसके वैश्विक परिदृश्य में हिंदी की सूचना प्रौद्योगिकी में स्थिति संतोषप्रद नहीं है। यह क्षेत्र और गहरे अनुसंधान की माँग कर रहा है। दूसरी ओर इसका विस्तार यानी इसे सर्वसुलभ बनाना भी आवश्यक है। "भले ही कंप्यूटर के इस क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग में सांख्यिकी प्रगति तो हमने बहुत कर ली है, परंतु वास्तविकता कुछ और ही है। यदि हम भारत में कंप्यूटर पर हिंदी को शीघ्र न ला पाए, तो हिंदी एक सर्वाधिक औपचारिकता ही रह जाएगी।"[7] फ्रांस, रूस, जापान, चीन आदि देशों ने अपनी भाषा के महत्व को जानकर समस्त कार्य व्यवहार अपनी भाषा में विकसित किया है। हमारे यहाँ सरकारी कार्यालयों में कंप्यूटर तो है लेकिन हिंदी में कार्य का अभाव है। भारत में वैश्वीकरण, आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण के परिप्रेक्ष्य में आम लोगों को सूचना

प्रौद्योगिकी का लाभ पहुँचाना है तो माध्यम के रूप में हिंदी या भारतीय भाषाओं का प्रयोग आवश्यक है। "आज भी हम हिंदी आईटी के विकास में उस लंबी व कठिन प्रक्रिया से गुजर रहे हैं जो देश में कंप्यूटरों के प्रसार, सस्ते दामों पर इंटरनेट की उपलब्धता, संचार साधनों की पहुँच बढ़ने, गाँव कस्बों में आईटी आधारित शिक्षा पहुँचाने और आईटी की जरूरत को लेकर जागरूकता बढ़ाने जैसे बिंदुओं पर निर्भर है।"[8] बदलते परिवेश पर गौर करते हुए हमें इस क्षेत्र में प्रगति करने की आवश्यकता है वरना हम विश्व की दौड़ से बाहर हो जाएँगे और अपनी भाषा भी नहीं बचा पाएँगे।

यदि हम विभिन्न क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी के प्रवेश को रोकेंगे तो वह हमारे लिए हानिकारक हो सकता है। अब अंग्रेजी के माध्यम से पैर फैलाने के पहले ही हमें उसे हिंदी से जोड़ना होगा। व्यापार को बढ़ाने की दृष्टि से हिंदी माध्यम का प्रसार आवश्यक है। भारत में हिंदी के अभाव में उद्योग-धंधे व्यापक आधार नहीं ले पाएँगे। सूचना प्रौद्योगिकी को व्यापक स्तर पर अपनी भाषा के साथ जोड़े बगैर उन्नति और विकास से बृहत्तर जनसंख्या लाभान्वित नहीं हो पाएगी। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इस तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं। इसी कारण विभिन्न जनसंचार माध्यम हिंदी को प्रयुक्त कर रहे हैं और इससे हिंदी के संपर्क भाषा रूप की पुष्टि हो गई है।

सूचना प्रौद्योगिकी के चलते जहाँ ज्ञान के क्षेत्र सुलभ हुए हैं वहाँ दूसरी ओर इसने कई चुनौतियाँ खड़ी की हैं। इसके चलते आज सांस्कृतिक परिदृश्य खतरे से गुजर रहा है। हमारी भाषाएँ संकट से गुजर रही हैं। मानक रूप अर्जित करने की होड़ में हिंदी जनपदीय जड़ से दूर जा रही है। भाषा तथ्यात्मक, सूचनात्मक, संवेदनशून्य और कृत्रिम बनती जा रही है। वह अंग्रेजी की भूमंडलीय छवि से आतंकित है। युवा पीढ़ी में विदेश आकर्षण बढ़कर उनमें लाचार मानसिकता बढ़ रही है। निरंतर परिवर्तन से जीवन अस्थिर बन गया है। हम अपनी अस्मिता और आत्मसजगता खोते जा रहे हैं। हम एक तरह से अपनी भाषा में जीना भूलते जा रहे हैं। एक कृत्रिम एवं वर्तमानजीवी भाषा पनप रही है जो मानवी संवदेना को जगाने में असमर्थ है। वह केवल कामचलाऊ अर्थ ढोने को मजबूर है। "भाषा को आधुनिकतम यंत्रों के हवाले कर हमने

एक खतरा मोल लिया है, भले ही इससे हमें बड़ी ही सुविधा प्राप्त हुई हो, लेकिन इससे भाषा निरंतर कृत्रिम और यांत्रिक होती जा रही है। यह चिंतन का विषय अवश्य है।"[9] हिंदी का संवदेनात्मक रूप खतरे में है, अंग्रेजी के मिश्रण से वह विकृत होती जा रही है, भाषा उपभोक्तावादी संस्कृति का हिस्सा बनती जा रही है इसे नकारा नहीं जा सकता। इसके कुछ खतरे अवश्य हैं लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़ना भी आवश्यक है। अंततः भाषा गतिशील है। वह अपने आप इससे उभरकर अपनी राह प्रशस्त करेगी। इस संदर्भ में पूरन चंद टंडन का मत द्रष्टव्य है, "उत्तर मध्यकालीन हिंदी साहित्य में जैसे दरबार आश्रय एक विवशता थी, अन्यथा दो सौ वर्षों तक हम साहित्य तथा भाषा से वंचित हो जाते, ठीक वैसे ही आज की जरूरत है कि हम हिंदी को साहित्य मात्र की चारदीवारी के बाहर निकालें और उसे नए-नए यंत्रों-प्रयोगों-अनुप्रयोगों से जोड़ें।"[10] अंततः कोई भी तंत्र भाषा की सत्ता को खारिज नहीं कर सकता बशर्ते सजगता रखी जाए।

सूचना प्रौद्योगिकी ने संपूर्ण मनुष्य जीवन को प्रभावित किया है। इससे जीवन की शैली एवं गुणवत्ता में परिवर्तन हुआ है। देशकाल की बाधाएँ खत्म हुई हैं। हर क्षेत्र में विकल्प मिल गए हैं। मनुष्य जीवन, उसकी सोच एवं व्यवहार में भारी बदलाव आया है। "कभी सूचनाओं को तरसते संसार में अब सूचनाओं की बाढ़-सी आ गई है। सकारात्मक प्रभाव के साथ संचार की इस बाढ़ के नकारात्मक खतरे भी हैं।"[11] इसके परिणाम अपरिभाषेय हैं। कंप्यूटर और इंटरनेट के चलते एक नई संस्कृति पनप रही है। भाषा, मनुष्य और सूचना प्रौद्योगिकी का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। मशीनीकरण के चलते हमारे मूल्य, जीवन स्तर, विचार और दृष्टिकोण में मूलभूत परिवर्तन आया है। हम आज चाहे न चाहे ई-मेल, टेलीनेट, ई-कॉमर्स, ई-गवर्नेंस, ई-विजिलेंस, ई-एज्युकेशन साइबर कॅफे या ई-कंटेंट के युग में प्रवेश कर रहे हैं। यह शब्दो का विश्वकोश की ओर अग्रसर होने का युग है। सूचना प्रौद्योगिकी ने विकास के अनेक अवसर प्रदान किए हैं। मूलतः तंत्र ज्ञान अपने में बुरा नहीं होता उसका उचित उपयोग आवश्यक है। टेलीफोन के आने से हमने मिलना-जुलना थोड़े ही छोड़ दिया है।

वास्तव में सूचना प्रौद्योगिकी विश्व के आर्थिक और सामाजिक वातावरण में स्वस्थ प्रगति का एक प्रेरणास्त्रोत है। बस आवश्यकता है इसे सर्वसुलभ बनाने की, सार्थक प्रयोग की। कारगर ढंग से सामाजिक, आर्थिक प्रगति में प्रयुक्त करने की। इससे उत्पादकता और कार्यकुशलता में अभिवृद्धि होगी। इसमें भाषा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः हमें अपनी भाषा में उसे ढालना होगा। विभिन्न संस्थाएँ हिंदी भाषा का अनुप्रयोग कर रही हैं। इसे विस्तार देकर बाजारवाद पर हिंदी का वर्चस्व बढ़ाना होगा। यदि हिंदी को इस क्षेत्र में गति दी जाएगी तो वह विश्वमंच पर आसीन होगी। दुनिया के साथ कदम मिलाना है तो हमें भाषाई अस्मिता की रक्षा करते हुए उसे सूचना प्रौद्योगिकी से जोड़ना होगा। भाषा में आवश्यक परिवर्तन स्वीकार कर चुनौतियों का सामना करना होगा। भारत में प्रौद्योगिकी के ज्ञान-विज्ञान के प्रभावी संप्रेषण की अपार संभावनाएँ हैं।

❑

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. भाषा, मई-जून 2002, पृ. 105
   (सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी, प्रो. सूरजभान सिंह)
2. डॉ. अमरसिंह वधान, भाषा और सूचना प्रौद्योगिकी, भूमिका
3. भाषा मई-जून 2002, पृ. 57
   (सूचना प्रौद्योगिकी के विविध आयाम, हरीश कुमार सेठ)
4. विजय कुमार मल्होत्रा, कंप्यूटर के भाषिक अनुप्रयोग, पृ. 60
5. डॉ. अमरसिंह वधान, भाषा और सूचना प्रौद्योगिकी, पृ. 24
6. भाषा, मई-जून 2002, पृ. 200
   (भाषा प्रौद्योगिकी का युग और हिंदी का वर्चस्व, डॉ. पूरन चंद टंडन)
7. राष्ट्रभाषा संदेश, 15 जनवरी, 2005, पृ. 6
   (सूचना प्रौद्योगिकी और हिंदी, सुरेंद्र कुमार)
8. सहारा समय (साप्ताहिक) 10 जुलाई, 2004, पृ.3
   (दस्तक हिंदी सूचना क्रांति की, बालेंदु दाधीच)
9. कालांतर, जुलाई 2004, पृ. 24
   (बिना भाषा के सूचना प्रौद्योगिकी संभव नहीं, डॉ. अमरसिंह वधान)
10. भाषा, मई-जून 2002, पृ. 203
    (भाषा प्रौद्योगिकी का युग और हिंदी का वर्चस्व, डॉ. पूरनचंद टंडन)
11. डॉ. चंद्रप्रकाश मिश्र, संचार और संचार माध्यम, पृ. 80

छत्तीसगढ़ के मेले

● राहुल कुमार सिंह

[छत्तीसगढ़ में मेले-मड़ई की लंबी परंपरा है। मेला आमतौर पर निश्चित तिथि-पर्व पर भरता है किंतु मड़ई सामान्यतः सप्ताह के निर्धारित दिन पर भरती है, क्योंकि यह साल भर लगने वाले साप्ताहिक बाजार का एक दिवसीय सालाना रूप माना जा सकता है। ऐसा स्थान, जहाँ साप्ताहिक बाजार नहीं लगता, वहाँ ग्रामवासी आपसी राय कर मड़ई का दिन निर्धारित करते हैं। पौष पूर्णिमा, रामनवमी, गंगा दशहरा आदि पर अनेक स्थानों पर मेले लगते हैं। माघ पूर्णिमा पर कबीर पंथी मेले लगते हैं। राजिम मेले की गिनती विशालतम मेलों में की जाती है। कुछ वर्षों से यहाँ लधुकुंभ का आयोजन हो रहा है। दीपावली के पश्चात 'दइहान' मड़ई का परंपरित रूप है। केशरपाल तथा बस्तर की मड़ई भी उल्लेखनीय है। मेला-मड़ई के स्वरूपों में कुछ परिवर्तन अवश्य आया है किंतु इनकी चमक आज भी बनी हुई है।]

विविधतापूर्ण छत्तीसगढ़ राज्य में विभिन्न प्रकार के मेलों का लंबा सिलसिला है, इनमें मुख्यतः उत्तर-पूर्वी क्षेत्र यानी जशपुर-रायगढ़ अंचल में जतरा अथवा रामरेखा, रायगढ़-सारंगढ़ का विष्णु यज्ञ-हरिहाट, चइत-राई और व्यापारिक मेला, कटघोरा-कोरबा अंचल का बार, दक्षिणी क्षेत्र यानी बस्तर के जिलों में मड़ई और अन्य हिस्सों में बजार, मातर और मेला जैसे विभिन्न जुड़ाव अपनी बहुरंगी छटा के साथ राज्य की सांस्कृतिक संपन्नता के जीवंत उत्सव हैं।

● उप संचालक, संस्कृति एवं पुरातत्व, छत्तीसगढ़, रायपुर (छत्तीसगढ़)

गीता का उद्धरण है-'मासानां मार्गशीर्षोऽहं...,' कृषि संस्कृति में खरीफ क्षेत्र में अगहन मास में घर-घर धन एकत्र होने लगता है, इसीलिए इसे माहों में श्रेष्ठ कहा गया है। यह व्याख्या सटीक जान पड़ती है और स्वाभाविक भी। इसी मास से मेलों की तैयारियाँ होने लगती हैं। मेलों की गिनती का आरंभ इस अंचल की परंपरा के अनुरूप राम अर्थात् रामनामियों के बड़े भजन से किया जा सकता है और फिर पौष पूर्णिमा अर्थात् छेरछेरा पर्व पर तुरतुरिया, सगनी घाट (अहिवारा), चरौदा (धरसीवां) और गोर्राइया (मांढर) का मेला भरता है। इसी तिथि पर अमोरा (तखतपुर), रामपुर, रनबोर (बलौदाबाजार) का मेला होता है, यह समय रउताही बाजारों के समापन और मेलों के क्रम के आरंभ का होता है, जो चैत मास तक चलता है। बेरला (बेमेतरा) का विशाल मेला भी पौष माह में आरंभ होता है, जो चैत मास तक चलता है। बेरला (बेमेतरा) का विशाल मेला भी पौष माह में (जनवरी में शनिवार को) भरता है। उद्धरण के अगले शब्द हैं '....ऋतूनां कुसुमाकरः', वसंत ऋतु तक चलने वाले मेलों के मुख्य सिलसिले का समापन चइत-राई से होता है, सरसीवाँ और भटगाँव के चैत नवरात्रि से वैशाख माह के आरंभ तक चलने वाले चइत-राई मेले पुराने और बड़े मेले हैं। कुदरगढ़ (सरगुजा) में रामनवमी पर बड़ा मेला भरता है। कुंवर अछरिया (सिंघनगढ़, साजा) और खल्लारी का मेला चैत पूर्णिमा पर भरता है।

भौगोलिक दृष्टि से उत्तरी क्षेत्र में कोरिया अंचल के पटना, बैकुंठपुर, चिरमिरी आदि कई स्थानों में गंगा दशहरा के अवसर पर मेला भरता है तो पुराने रजवाड़े नगरों में, विशेषकर जगदलपुर में दशहरा का मेला प्रमुख है, किंतु खैरागढ़ के अलावा खंडुआ (सिमगा), ओड़ेकेरा और जैजैपुर में भी दशहरा के अवसर पर विशाल मेला भरता है और भंडारपुरी में दशहरा के अगले दिन मेला भरता है। सारंगढ अंचल के अनेक स्थलों में विष्णु यज्ञों का आयोजन होता है और यह मेले का स्वरूप ले लेता है, जिन्हें हरिहाट मेला भी कहा जाता है। सारंगढ़ अंचल में सहजपाली और पोरथ में मकर संक्राति पर मेला लगता है। इसके साथ-साथ क्वांर और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवरात्रियों पर भी मेला भरने का चलान पिछले सालों में बढ़ा है। इनमें झलमला (बालोद) में दोनों नवरात्रि पर बड़े मेले भरते हैं और रतनपुर में इस अवसर पर प्रज्वलित होने वाले ज्योति कलशों की संख्या दस हजार पार कर जाती है। अकलतरा के निकट दलहा पहाड़ पर नागपंचमी का मेला होता है,

जिसमें पहाड़ के उपर चढ़ने की प्रथा है। विगत वर्षों में कांवड़िया श्रद्धालुओं द्वारा सावन सोमवार पर शिव मंदिरों में जल चढ़ाने की प्रथा भी तेजी से बढ़ी है। पारंपरिक तिथि-पर्वों से हटकर सर्वाधिक उल्लेखनीय कटघोरा का मेला है, जो प्रतिवर्ष राष्ट्रीय पर्व गणतंत्र दिवस पर 26 जनवरी को भरता है।

आमतौर पर फरवरी माह में पड़ने वाला दुर्ग का हजरत बाबा अब्दुल रहमान शाह का उर्स, राजनांदगांव का सैयद बाबा अटल शाह का उर्स, लुतरा शरीफ (सीपत), सोनपुर (अंबिकापुर) और सारंगढ़ के उर्स का स्वरूप मेलों की तरह होता है। रायगढ़ अंचल में पिछली सदी के जनजातीय धार्मिक प्रमुख और समाज सुधारक गहिरा गुरु के मेले चिखली, सूरजगढ़, रेंगापाली, लेंध्रा, बरमकेला आदि कई स्थानों पर भरते हैं, इनमें सबसे बड़ा माघ सुदी 11 को ग्राम गहिरा (घरघोड़ा) में भरने वाला मेला है।

इसी प्रकार कुदुरमाल (कोरबा), दामाखेड़ा (सिमगा) में माघ पूर्णिमा पर कबीरपंथी विशाल मेले आयोजित होते हैं तथा ऐसे कई अन्य कबीरपंथी जुड़ाव-भंडारा सरगुजा अंचल में होते हैं। दामाखेड़ा, कबीरपंथियों की महत्वपूर्ण गद्दी में से है, जबकि कुदुरमाल में कबीरदास जी के प्रमुख शिष्य धरमदास के पुत्र चुड़ामनदास एवं अन्य दो गुरुओं की समाधियाँ है। मेले के अवसर पर यहाँ अन्य धार्मिक अनुष्ठानों के साथ कबीर पंथ में दीक्षित भी किया जाता है। विगत वर्षों में गुरु घासीदास के जन्म स्थान गिरोदपुरी में फाल्गुन सुदी 5 से भरने वाले तीन दिवसीय मेले में उपस्थिति कई गुना बढ़ गई है। शिवनाथ नदी के बीच मनोरम प्राकृतिक टापू मदकूघाट अथवा मदकूदीप, दरवन (बैतलपुर) में सामान्यत: फरवरी माह में विगत 97 वर्षों से भर रहा ईसाई मेला और मालखरौदा का क्रिसमस सप्ताह का धार्मिक समागम उल्लेखनीय है। मदकूदीप में एक अन्य पारंपरिक मेला पौष में भी भरता है।

दुर्ग जिला का ग्राम नगपुरा प्राचीन शिव मंदिर के कारण जाना जाता है, किंतु यहाँ से तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्राचीन प्रतिमा भी प्राप्त हुई है। पिछले वर्षों में यह स्थल श्री उवसग्गहरं पार्श्व तीर्थ के रूप में विकसित हो गया है। यहाँ दिसंबर माह में शिवनाथ उत्सव, नगपुरा नमस्कार मेला का आयोजन किया जा रहा है, जिसमें जैन धर्मावलंबियों की बड़ी संख्या में उपस्थिती होती है। इसी प्रकार वैष्णव मत के पुष्टिमार्गीय शाखा के

अनुयायी पूरे देश और विदेशों से भी बड़ी तादाद में चंपारण में आते हैं, जो महाप्रभु वल्लभाचार्य का प्राकट्य स्थल माना जाता है और यह अवसर होता है उनकी जयंती (वैशाखी बदी 11) का।

आमतौर पर प्रति तीसरे साल आयोजित होने वाले 'बार' में तुमान (कटघोरा) तथा बसीबार (पाली) का 12 दिन और 12 रात लगातार चलने वाले मेले का अपना विशिष्ट स्वरूप है। छत्तीसगढ़ी का शब्द-युग्म 'तिहार-बार' इसी से बना है। इस आयोजन के लिए शब्द युग्म 'तीज-तिहार' के तीज की तरह ही बेटी-बहुओं और रिश्तेदारों को खास आग्रह सहित आमंत्रित किया जाता है। गाँव का शायद की कोई घर छूटता हो, जहाँ इस मौके पर अतिथि न होते हों। यानी बार भी मेलों की तरह सामान्यत: पारिवारिक, सामाजिक, सामुदायिक, आर्थिक आवश्यकता-पूर्ति के माध्यम हैं। इसमें तुमान बार की चर्चा और प्रसिद्धि बैलों की दौड़ के कारण होती है। कटघोरा-कोरबा क्षेत्र का बार आगे बढ़कर, सरगुजा में 'बायर' नाम से आयोजित होता है। 'बायर' में ददरिया या कव्वाली की तरह युवक-युवतियों में परस्पर आशु काव्य के सवाल-जवाब से लेकर गहरे श्रृंगारिक भावपूर्ण समस्या पूर्ति के काव्यात्मक संवाद होते हैं। कटघोरा क्षेत्र के बार में गीत-नृत्य का आरंभ 'हाय मोर दइया रे, राम जाहइया तोला मया ह लागे' टेक से होता है।

रायगढ़ की चर्चा मेलों के नगर के रूप में की जा सकती है। यहाँ रथयात्रा, जन्माष्टमी और गोपाष्टमी धूमधाम से मनाया जाता है और इन अवसरों पर मेले का माहौल रहता है। इस क्रम में गणेश चतुर्थी के अवसर पर आयोजित होने वाले दस दिवसीय चक्रधर समारोह में लोगों की उपस्थिति किसी मेले से कम नहीं होती। छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण के बाद इसका स्वरूप और चमकदार हो गया है। इसी प्रकार सारंगढ़ का रथयात्रा और दशहरा का मेला भी उल्लेखनीय है। बिलासपुर में चांटीडीह के पारंपरिक मेले के साथ, अपने नए स्वरूप में रावत नाच महोत्सव (शनिचरी) और लोक विधाओं के बिलासा महोत्सव का महत्वपूर्ण आयोजन होता है। रायपुर में कार्तिक पूर्णिमा पर महादेव घाट का पारंपरिक मेला भरता है।

छत्तीसगढ़ राज्य गठित होने के पश्चात आरंभ हुए राज्य के सबसे नए बड़े मेले के रूप में रायपुर के राज्योत्सव की गणना है। विगत दो

वर्षों से राज्य स्थापना की वर्षगाँठ पर जिला मुश्यालयों में भी राज्योत्सव का आयोजन किया जा रहा है। इस क्रम में विभिन्न उत्सवों का जिक्र उपयुक्त होगा। भोरमदेव उत्सव, कवर्धा (अप्रैल), रामगढ़ उत्सव, सरगुजा (आषाढ़), लोककला महोत्सव, भाटापारा (मई-जून), सिरपुर उत्सव (फरवरी), खल्लारी उत्सव, महासमुंद (मार्च-अप्रैल), ताला महोत्सव, बिलासपुर (फरवरी), मल्हार महोत्सव, बिलासपुर (मार्च-अप्रैल), बिलासा महोत्सव, बिलासपुर (फरवरी-मार्च), रावत नाच महोत्सव, बिलासपुर (नवंबर), जाज्वल्य महोत्सव (जनवरी), शिवरीनारायण महोत्सव, जांजगीर-चांपा (माघ-पूर्णिमा), लोक-मड़ई, राजनांदगांव (मई-जून) आदि आयोजनों ने मेले का स्वरूप ले लिया है। इनमें से कुछ उत्सव-महोत्सव वस्तुत: पारंपरिक मेलों के अवसर पर ही सांस्कृतिक कार्यक्रमों के रूप में आयोजित किए जाते हैं, जिनमें श्री राजीवलोचन महोत्सव, राजिम (माघ-पूर्णिमा) सर्वाधिक उल्लेखनीय है।

राजिम मेले की गिनती राज्य के विशालतम मेलों में हैं। राज्य बनने के पश्यात् क्रमश: इस मेले ने न सिर्फ अपना पुराना आकार फिर से पाया है, बल्कि इसके स्वरूप और आकार में खासी बढ़ोतरी हुई है। माघ-पूर्णिमा पर भरने वाले इस मेले का केंद्र राजिम होता है, किंतु इसका विस्तार पंचकोशी क्षेत्र में पटेवा (पटेश्वर), कोपरा (कोपश्वर), फिंगेश्वर (फणिकेश्वर), चंपारण (चंपकेश्वर) तथा बम्हनी (ब्रह्मणेश्वर) तक होता है। इन शैव स्थलों के कारण मेले का माहौल शिवरात्रि तक बना रहता है। विगत वर्षों में इस मेले का रूप लघु कुंभ जैसा हो गया है और अब 'श्री राजीवलोचन कुंभ' के नाम से आयोजित हो रहा है। मेले के दौरान कल्पवास और संत समागम से यहाँ प्रतिवर्ष आगंतुकों की संख्या में वृद्धि हो रही है। संख्या की दृष्टि से राज्य के विशाल मेलों में से एक जगदलपुर का दशहरा मेला है। इसके अतिरिक्त चपका, बस्तर की प्रतिष्ठा पुराने बड़े मेले के रूप में है।

शिवरीनारायण-खरौद का मेला भी माघ-पूर्णिमा से आरंभ होकर महाशिवरात्रि तक चलता है। मान्यता है कि माघ-पूर्णिमा के दिन पुरी के जगन्नाथ मंदिर का 'पट' बंद रहता है और वे शिवरीनारायण में विराजते हैं। इस मेले में दूर-दूर से श्रद्धालु और मेलार्थी बड़ी संख्या में पहुँचते हैं। भक्त नारियल लेकर 'भुंइया नापते' या 'लोट मारते' मंदिर तक पहुँचते

हैं। यह संकल्प अथवा मान्यता के लिए किए जाने वालो उद्यम की प्रथा है। प्रतिवर्ष होने वाले खासकर 'तारे-नारे' जैसी लोक विधाओं का प्रदर्शन अब दिखाई नहीं पड़ती लेकिन अब उत्सव का आयोजन होने से लोक विधाओं को प्रोत्साहन मिल रहा है। छत्तीसगढ़ में शिवरीनारायण की प्रतिष्ठा तीर्थराज जैसी है। अंचल के लोग सामान्य धार्मिक अनुष्ठानों से लेकर अस्थि विसर्जन तक का कार्य यहाँ संपन्न करते हैं। इस अवसर पर मंदिर के प्रांगन में अभी भी सिर्फ ग्यारह रुपए में सत्यनारायण भगवान की कथा कराई जा सकती है। यह मेला जाति-पंचायतों के कारण भी महत्वपूर्ण है, जहाँ रामनामी, निषाद, देवार, नायक और अघरिया-पटेल-मरार जाति-समाज की सालाना पंचायत होती है। विभिन्न संप्रदाय, अखाड़ों के साधु-संन्यासी और मनोरंजन के लिए मौत का कुँआ, चारोंधाम, झूला, सर्कस, सिनेमा जैसे मेला के सभी घटक शिवरीनारायण मेले में देखे जा सकते हैं। पहले गोदना गुदवाने के लिए भी मेले का इंतजार होता था, अब इसकी जगह रंग-छापे वाली मेहंदी ने ले लिया है। गन्ने के रस में पगा लाई का 'उखरा' प्रत्येक मेलार्थी अवश्य खरीदता है। मेले की चहल-पहल शिवरीनारायण के माघ पूर्णिमा से खरौद की शिवरात्रि तक फैल जाती है। ग्रामीण क्षेत्र में पिन खजूर खरीदी के लिए आमतौर पर उपलब्ध न होने और विशिष्टता के कारण, मेलों की खास चीज होती थी।

उखरा की तरह ही मेलों की सर्वप्रिय एक खरीदी बताशे की होती है। यह एक प्रकार से कथित क्रमश: उपर और खाल्हे राज के मेलों की पहचान भी है। इस संदर्भ में उपर और खाल्हे राज की पहचान का प्रयास करना आवश्यक प्रतीत होता है। इसके अलावा एक अन्य प्रचलित भौगोलिक नामकरण 'चांतर राज' है, जो निर्विवाद रूप से छत्तीसगढ़ का मध्य मैदानी हिस्सा है, किंतु 'उपर और खाल्हे' राज, उच्च और निम्न का बोध कराते हैं और शायद इसीलिए, उच्चता की चाह होने के कारण इस संबंध में मान्यता एकाधिक है। ऐतिहासिक दृष्टि से राजधानी होने के कारण रतनपुर, जो लीलागर नदी के दाहिने तट पर है, को उपर राज और लीलागर नदी के बाएँ तट का क्षेत्र खाल्हे राज कहलाया और कभी-कभार दक्षिणी-रायपुर क्षेत्र को भी पुराने लोग बातचीत में खाल्हे राज कहा करते हैं। बाद में राजधानी-संभागीय मुख्यालय रायपुर आ जाने के बाद उपर

राज का विशेषण, इस क्षेत्र ने अपने लिए निर्धारित कर लिया, जिसे अन्य ने भी मान्य कर लिया। एक मत यह भी है कि शिवनाथ का दाहिना-दक्षिणी तट, उपर राज और बायाँ-उत्तरी तट खाल्हे राज, जाना जाता है, किंतु अधिक संभव और तार्किक जान पड़ता है कि शिवनाथ के बहाव की दिशा में यानी उद्‌गम क्षेत्र उपर राज और संगम की ओर खाल्हे राज के रूप में माना गया है।

छत्तीसगढ़ की काशी कहे जाने वाले खरौद के लक्ष्मणेश्वर महादेव मंदिर में दर्शन और लाखा चाँउर चढ़ाने की परंपरा है, जिसमें हाथ से 'दरा, पछीना और निमारा' गिन साबुत एक लाख चांवल मंदिर में चढ़ाए जाने की प्रथा है। इसी क्रम में लीलागर के नंदियाखंड में बसंत पंचमी पर कुटीघाट का प्रसिद्‌ध मेला भरता है। इस मेले में तीज की तरह बेटियों को आमंत्रित करने का विशेष प्रयोजन होता है, क्योंकि इस मेले की प्रसिद्‌धि वैवाहिक रिश्तों के लिए 'परिचय सम्मेलन' जैसा होने के कारण भी है। बताया जाता है कि विक्रमी संवत् की इक्कीसवीं शताब्दी आरंभ होने के उपलक्ष्य में रतनपुर में आयोजित श्री विष्णु महायज्ञ के पश्चात् कुटीघाट में भी विशाल यज्ञ आयोजित हुआ जो मेले का स्वरूप प्राप्त कर प्रतिवर्ष भरता आ रहा है।

'लाखा चाँउर' की प्रथा हसदेव नदी के किनारे कलेश्वरनाथ महादेव मंदिर, पीथमपुर में भी है, जहाँ होली-धूल पंचमी पर मेला भरता है। इस मेले की विशिष्टता नागा साधुओं द्‌वारा निकाली जाने वाली शिवजी की बारात है। मान्यता है कि यहाँ महादेवजी के दर्शन से पेट के रोग दूर होते हैं। इस संबंध में पेट के रोग से पीड़ित एक तैलिक द्‌वारा स्वप्नादेश के आधारपर शिवलिंग स्थापना की कथा सर्वविदित है। वर्तमान मंदिर का निर्माण खरियार के जमींदार द्‌वारा कराया गया है, जबकि मंदिर का पुजारी परंपरा से 'साहू' जाति का होता है। इस मेले का स्वरूप प्राकृतिक आपदाओं व अन्य दुर्घटनाओं के बावजूद भी लगभग अप्रभावित है। कोरबा अंचल के प्राचीन स्थल ग्राम कनकी के जांता महादेव मंदिर का पुजारी परंपरा से 'यादव' जाति का होता है। इस स्थान पर भी शिवरात्रि के अवसर पर विशाल मेला भरता है।

चांतर राज में पारंपरिक रूप से मेले की सर्वाधिक महत्वपूर्ण तिथियाँ माघ पूर्णिमा और महाशिवरात्रि (फाल्गुन बदी 13) हैं और इन्हीं तिथियों

पर अधिकतर बड़े मेले भरते हैं। माघ पूर्णिमा पर भरने वाले अन्य बड़े मेलों में सेतगंगा, रतनपुर, बेलपान, लोदाम, बानबरद, झिरना, डोंगरिया (पांडातराई), खड़सरा, सहसपुर, चकनार-नरबदा (गंड़ई), बंगोली और सिरपुर प्रमुख हैं। इसी प्रकार शिवरात्रि पर भरने वाले प्रमुख मेलों में सेमरसल, अखरार, कोटसागर, लोरमी, नगपुरा (बेलतरा), मल्हार, पाली, परसाही (अकलतरा), देवरघट, तुर्री, दशरंगपुर, सोमनाथ, देव बलौदा और किलकिला पहाड़ (जशपुर) मेला हैं। कुछेक शैव स्थलों पर अन्य तिथियों पर मेला भरता है, जिनमें मोहरा (राजनांदगांव) का मेला कार्तिक पूर्णिमा को, भोरमदेव का मेला चैत्र बदी 13 को तथा लटेश्वरनाथ, किरारी (मस्तुरी) का मेला माघ बदी 13 को भरता है।

रामनवमी से प्रारंभ होने वाले डभरा (चंदरपुर) का मेला दिन की गरमी में ठंडा पड़ा रहता है लेकिन जैसे-जैसे शाम ढलती है, लोगों का आना शुरू हो जाता है और गहराती रात के साथ यह मेला अपने पूरे शबाब पर आ जाता है। संपन्न अघरिया कृषकों के क्षेत्र में भरने वाले इस मेले की खासियत चर्चित थी कि यह मेला अच्छे-खासे 'कॅसीनो' को चुनौती दे सकता था। यहाँ अनुसूचित जाति के एक भक्त द्‌वारा निर्मित चतुर्भुज विष्णु का मंदिर भी है। कौड़िया का शिवरात्रि का मेला प्रेतबाधा से मुक्ति और झाड़-फूँक के लिए जाना जाता है। कुछ साल पहले तक पीथमपुर, शिवरीनारायण, मल्हार, चेटुआ आदि कई मेलों की चर्चा देह-व्यापार के लिए भी होती थी। कहा जाता है कि इस प्रयोजन के मुहावरे 'पाल तानना' और 'रावटी जाना' जैसे शब्द, इन मेलों से निकले हैं। रात्रिकालीन मेलों का उत्स अगहन में भरने वाले डुंगुल पहाड़ (जशपुर) के रामरेखा में दिखता है। इस क्षेत्र का एक अन्य महत्वपूर्ण व्यापारिक आयोजन बागबहार का फरवरी में भरने वाला मेला है।

धमतरी अंचल का मेला और मड़ई का समन्वय क्षेत्र माना जा सकता है। इस क्षेत्र में कंवर की मड़ई, रूद्रेश्वर महादेव का रूद्री मेला और देवपुर का माघ मेला भरता है। एक अन्य प्रसिद्‌ध मेला चंवर का अंगारमोती देवी का मेला है। इस मेले का स्थल गंगरेल बाँध के डूब में आने के बाद अब बाँध के पास ही पहले की तरह दीवाली के बाद आने वाले शुक्रवार को भरता है। मेला और मड़ई दोनों का प्रयोजन धार्मिक होता है, किंतु मेला स्थिर-स्थायी देव स्थलों में भरता है, जबकि मड़ई में

निर्धारित देव स्थान पर आस-पास के देवताओं का प्रतीक -'डांग' लाया जाता है अर्थात् मड़ई एक प्रकार का देव सम्मेलन भी है। मैदानी छत्तीसगढ़ में बइगा-निखाद और यादव समुदाय की भूमिका मड़ई में सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। बइगा, मड़ई लाते और पूजते हैं, जबकि यादव नृत्य सहित बाजार परिक्रमा, जिसे बिहाव या परघाना कहा जाता है, करते हैं। मेला, आमतौर पर निश्चित तिथि-पर्व पर भरता है किंतु मड़ई सामान्यत: सप्ताह के निर्धारित दिन पर भरती है, क्योंकि यह साल भर लगने वाले साप्ताहिक बाजार का एक दिवसीय सालाना रूप माना जा सकता है। ऐसा स्थान, जहाँ साप्ताहिक बाजार नहीं लगता, वहाँ ग्रामवासी आपसी राय कर मड़ई का दिन निर्धारित करते हैं। मोटे तौर पर मेला और मड़ई में यही फर्क है।

मड़ई का सिलसिला शुरू होने के पहले, दीपावली के पश्चात् यादव समुदाय द्वारा मातर का आयोजन किया जाता है, जिसमें मवेशी इकट्ठा होने की जगह-'दइहान' अथवा निर्धारित स्थल पर बाजार भरता है। मेला-मड़ई की तिथि को खड़खड़िया और सिनेमा, सर्कस वाले भी प्रभावित करते थे और कई बार इन आयोजनों में प्रायोजक के रूप में इनकी मुख्य भागीदारी होती थी। दूसरी तरफ मेला आयोजक, खासकर सिनेमा (टूरिंग टाकीज) संचालकों को मेले के लिए आमंत्रित किया करते थे और किसी मेले में टूरिंग टाकीज की संख्या के आधार पर मेले का आकार और उसकी महत्ता का अनुमान लगाया जाता था। मेला-मड़ई के संदर्भ में मवेशी बाजार का उल्लेख आवश्यक है, क्योंकि मैदानी छत्तीसगढ़ की पृष्ठभूमि में नायक-बंजारों के साथ तालाबों की परंपरा, मवेशी व्यापार और प्राचीन थलमार्ग की जानकारी मिलती है।

बस्तर के जिलों में मड़ई की परंपरा है, जो दिसंबर-जनवरी माह से आरंभ होती है। अधिकतर मड़ई एक दिन की ही होती है, लेकिन समेटते हुए दूसरे दिन की 'बासी मड़ई' भी लगभग स्वाभाविक अनिवार्यता है। चूँकि मड़ई, तिथि-पर्व से संलग्न सप्ताह दिवसों पर भरती है, इसीलिए इनका उल्लेख मोटे तौर पर अंग्रेजी माहों के अनुसार किया जा सकता है। केशकाल घाटी के ऊपर, जन्माष्टमी और पोला के बीच, भादों बदी के प्रथम शनिवार (सामान्यत: सितंबर) को भरने वाली भंगाराम देवी की मड़ई को भादों जात्रा भी कहा जाता है। भादों जात्रा के इस विशाल

आयोजन में सिलिया, कोण्गूर, औवरी, हडेंगा, कोपरा, विश्रामपुरी, आलौर, कोंगेटा और पीपरा, नौ परगनों के मांझी क्षेत्रों के लगभग 450 ग्रामों के लोग अपने देवताओं को लेकर आते हैं। भंगाराम देवी प्रमुख होने के नाते प्रत्येक देवी-देवताओं के कार्यों की समीक्षा करती है और निर्देश या दंड भी देती है। माना जाता है कि इस क्षेत्र में कई ग्रामों की देव शक्तियाँ आज भी बंदी हैं। यहाँ के मंदिर का सिरहा, बंदी देवता के सिरहा पुजारी से भाव आने पर वार्ता कर दंड या मुक्ति तय करता है। परंपरा और आकार की दृष्टि से भंगाराम मड़ई का स्थान विशिष्ट और महत्वपूर्ण है।

मड़ई के नियमित सिलसिले की शुरूआत अगहन पूर्णिमा पर केशरपाल में भरने वाली मड़ई में देखी जा सकती है। इसी दौर में सरवंडी, नरहरपुर, देवी नवागाँव और लखनपुरी की मड़ई भरती है। जनवरी माह में कांकेर (पहला रविवार), चारामा और चित्रकोट मेला तथा गोविंदपुर, हल्बा, हर्राडुला, पटेगांव, सेलेगांव (गुरुवार, कभी फरवरी के आरंभ में भी), अंतागढ़, जैतलूर और भद्रकाली की मड़ई होती है। फरवरी में देवरी, सरोना, नारायणपुर, देवड़ा, दुर्गकोंदल, कोड़ेकुर्से, हाटकर्रा (रविवार), संबलपुर (बुधवार), भानुप्रतापपुर (रविवार), आसुलखार (सोमवार), कोरर (सोमवार) की मड़ई होती है।

बस्तर की मड़ई माघ-पूर्णिमा को होती है। बस्तर के बाद घोटिया, मूली, जैतगिरी, गारेंगा और करपावंड की मड़ई भरती है। यही दौर महाशिवरात्रि के अवसर पर चपका की मड़ई का है, जो अपने घटते-बढ़ते आकार और लोकप्रियता के साथ आज भी अंचल का अत्यधिक महत्वपूर्ण आयोजन है। मार्च में कोंडागांव (होली जलने के पूर्व मंगलवार), केशकाल, फरसगाँव, विश्रामपुरी और मद्देड़ का सकलनारायण मेला होता है। दंतेवाड़ा में दंतेश्वरी का फागुन मेला 9 दिन चलता है। अप्रैल में धनोरा, भनपुरी, तीरथगढ़, मावलीपदर, घोटपाल, रामाराम (सुकमा) मड़ई होती है। इस क्रम का समापन इलमिड़ी में पोचम्मा देवी के मई के आरंभ में भरने वाले मेले से होता है।

मेला-मड़ई के स्वरूप में समय के साथ परिवर्तन अवश्य हुआ है, किंतु धार्मिक पृष्ठभूमि में समाज की आर्थिक-सामुदायिक आवश्यकता के अनुरूप इन सतरंगी मेलों के रंग की चमक अब भी बनी हुई है और सामाजिक चलन की नब्ज टटोलने का जैसा सुअवसर आज भी मेलों में मिलता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं।

❑

प्राचीन भारतीय परंपरा में छोटा परिवार

● डॉ. आर. पी. पाठक
●●डॉ. अमिता पांडेय भारद्वाज

[प्राचीनकाल में संपूर्ण भारत की जनसंख्या कम थी और विस्तार की भी संभावनाएँ अत्यधिक थीं। तत्कालीन भारतीय पूर्वजों ने बहुविवाह के साथ-साथ कामना की कि 'हे प्रभो इस वधू को दश पुत्रों का आशीर्वाद दो और इसका पति उनके बीच ग्यारहवाँ (व्यक्ति) होकर रहे।' परंतु जैसे-जैसे समाज का विस्तार हुआ, जनसंख्या बढ़ी तथा उत्पादन एवं जनसंख्या में असंतुलन की स्थिति पैदा होने लगी। इस आवश्यकता ने एक पत्नीव्रत की धारणा को जन्म दिया। ऋग्वेद संहिता में एक पत्नीव्रत का संकेत मिलता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि अधिक संतान वाला व्यक्ति घोर कष्टों का अनुभव करता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने एक पत्नीव्रत निभाकर समाज के सामने एक आदर्श उपस्थित किया। इनके दो ही तेजस्वी पुत्र हुए लव और कुश। यही इस लेख का केंद्र बिंदु है।]

प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है कि जहाँ हमने एक ओर अपने शाश्वत मूल्यों को पहचान कर दृढ़तापूर्वक पकड़े रखा, वहीं निरंतर बदलते हुए समाज में परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको ढालने का लचीलापन भी बनाए रखा। इसी लचीलेपन का ही परिणाम है

●● वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षाशास्त्र, रीडर, शिक्षाशास्त्र श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय), नई दिल्ली-110016

कि सहस्त्रों वर्षों के उतार-चढ़ाव के बीच से गुजरती हुई हमारी संस्कृति में विद्यमान परंपराएँ सदैव प्राणवान बनी रहीं और मानवता को एक से बढ़कर एक अमूल्य रत्न प्रदान करती रहीं।

प्रत्येक समुदाय-समाज के जीवन निर्वाह करने के अपने ढंग हैं और वही उसका धर्म है। मनीषियों की उक्ति पूर्णतया सत्य है कि "अभ्युदय नि:श्रेयस्करों धर्म:" अर्थात् जिससे सांसारिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक विकास भी हो वही धर्म है। "धर्म:" शब्द के लिए यह भी कहा गया है कि "धारणद्धर्ममित्याहु:" अर्थात् जिन नियमों से समाज सुस्थिर रहते हुए उन्नत हो वह धर्म है। सुखी एवं आनंदमय जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्य में सत्य, दया, शांति तथा अहिंसा के गुणों का होना अति आवश्यक है।

विभिन्न युगों की सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुरूप ही सामाजिक, पारिवारिक और वैवाहिक नियमों का निर्धारण हुआ। इन्हीं स्थितियों के अनुरूप भारतीय मनीषियों ने समय-समय पर जीवन के चार पुरुषार्थ यथा - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा चार आश्रमों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास की परिकल्पना की। पुरुषार्थों तथा आश्रमों की इस परिकल्पना में समाज को सदैव उन्नतिशील और मानव मात्र के लिए कल्याणकारी बनाए रखने की उच्चाभिलाषा के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

चार आश्रमों की परिकल्पना में हमारे विवेकशील ऋषियों ने गृहस्थाश्रम को ही सर्वाधिक महत्व दिया है क्योंकि यही आश्रम मानव-जीवन की रीढ़ है।

मनु-स्मृति में गृहस्थाश्रम का महत्व इन शब्दों में किया गया है-

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवय:।
तथा गृहस्थमास्थाय वर्तन्ते सर्व आश्रमा:॥

(मनु. 377)

जैसे समस्त प्राणी वायु पर आश्रित रहते हैं उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ पर आश्रित हैं–

यस्मात् तयोऽव्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गहस्थेनैव धार्यन्ते तसामाज्जयेष्ठाश्रमों गृही॥

(मनु. 378)

"क्योंकि गृहस्थाश्रम ही ज्ञान तथा अन्न के द्वारा प्रतिदिन तीनों आश्रमों का पोषण करता है इसलिए गृहस्थ ही चारों आश्रमों में श्रेष्ठ है।"

गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर मनुष्य अपने वंश को बढ़ाता है और जिसने भी इस संसार में जन्म ले लिया है वह देवों, ऋषियों, पितरों और मनुष्यों का ऋणी हो जाता है। देव ऋण से मुक्ति पाने के लिए वह पूजा-पाठ करता है, सिंजदा करता है, ऋषि ऋण को वह विद्यार्जन (अध्ययन) के फलस्वरूप चुकाता है और इस प्रकार ऋषियों एवं मनीषियों तथा विद्वानों की निधि की रक्षा करने वाला होता है जिसके फलस्वरूप अपने जीवन में विद्वान बनता है। संतान के रूप में उत्पन्न होने के कारण वह पितरों का ऋणी होता है और संतान उत्पन्न कर वंश परंपरा को बढ़ाते हुए वह पितृ ऋण से मुक्त होता है। अतिथि-सत्कार तथा भोजनादि द्वारा निराश्रितों का पोषण कर वह मनुष्य ऋण से मुक्त होता है। जो मनुष्य अपने जीवन में इस सभी कर्तव्यों का निर्वाह करता है वह सब कुछ जीत लेता है।

ऋण, पुरुषार्थ और आश्रम की इन अनोखी कल्पनाओं ने भारतीय संस्कृति को जीवन के शाश्वत मूल्यों के साथ दृढ़तापूर्वक जोड़कर युगानुरूप परिस्थितियों से जूझने के लिए धर्मों में समय-समय पर परिवर्तन करने की विवेकशीलता और क्षमता प्रदान की। भारतीय विवाह तथा गृहस्थाश्रम की संकल्पना इसका बहुत सुंदर उदाहरण है।

प्राचीन काल में संपूर्ण भारत की जनसंख्या कम थी और विस्तार की भी संभावनाएँ अत्यधिक थीं। उस युग की आवश्यकताओं के अनुरूप हमारे तत्कालीन भारतीय पूर्वजों ने बहु विवाह के साथ-साथ विवाह के आशीर्वाद मंत्रों में यह भी कामना की कि:-

दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादर्श कृधि।

(ऋग्वेद संहिता 10, 85, 45)

"हे प्रभो इस वधू को दश पुत्रों का आशीर्वाद दो और इसका पति उनके बीच ग्यारहवां (व्यक्ति) होकर रहे।"

परंतु जैसे-जैसे समाज का विस्तार हुआ, जनसंख्या बढ़ी तथा उत्पादन एवं जनसंख्या अनुपात में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होने लगी इस नवीन परिस्थिति के अनुकूल वैदिक ऋषियों ने विवाह-संस्था तथा

संतति-उत्पादन पर नियंत्रण आवश्यक समझा। इस आवश्यकता ने एक पत्नी-व्रत की धारणा को जन्म दिया। विवाह में वधू का पाणि ग्रहण करते हुए वर से कहलाया गया है कि-

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं।
मया पत्या जरदष्टिर्यथासः॥

(ऋग्वेद संहिता 10, 85, 36)

"(हे वधु) सौभाग्य के लिए मैं तुम्हारा पाणिग्रहण करता हूँ, (और कामना करता हूँ कि) मुझ पति के साथ तुम बुढ़ापे तक रहो।" इस मंत्र में एक 'पत्नी व्रत' का अच्छा संकेत मिलता है। इसके साथ ही वर प्रतिज्ञा करता है कि "नातिवरेयम्" (पाराशर-गृह सूत्र) अर्थात् मैं (इस वधू के प्रति) अतिचार नहीं करूँगा।

समाज के साधनों के अनुरूप समाज की समृद्धि को ध्यान में रखते हुए सीमित संतति यहाँ तक कि केवल एक यशस्वी पुत्र की कामना यजुर्वेद की प्रार्थना में की गई है। "समेयो युवास्थ यजमानस्य वीरो जायता" अर्थात् इस यजमान का एक सभ्य मौन-संपन्न पुत्र हो। दांपत्य जीवन में मनुष्य अपनी संतान की संख्या बढ़ाने से न अपने सामाजिक ऋणों को चुकाने में समर्थ हो सकता है और न समाज का, न स्वयं अपना ही कल्याण कर सकता है। उसे तो जीवन भर दरिद्रता का ही भार ढोना पड़ता है। सातवीं शताब्दी में यास्क मुनि के ग्रंथ "निरूक्त" में दिए गए एक वेद मंत्र में कहा गया है-

निष्टक्त्रासश्चिदर्थिन भूरि तोका वृकादिव।
विभ्यस्यन्तो क्वाशिरे शिशिरं जीवनाय कम्॥

(निरूक्त)

"बहुत संतानों वाले लोग (जो निश्चित ही) वस्त्र विहीन सदैव धन के लिए चिंतित रहते हैं, वे जाड़े से ऐसा डरते हैं जैसे कोई भेड़िए से डरता है। (और मानते हैं कि हे प्रभो इस जाड़े से) हमारे जीवन की रक्षा करो।"

इसी प्रसंग में आचार्य यास्क ने परिव्राजकों (संन्यासियों) की यह कल्याणकारी उक्ति जोड़ दी है कि-

बहुप्रजाः कृच्छ्रमापद्यते इति परिव्राजकाः।

"परिव्राजकों का यह मत है कि अत्यधिक संतान वाला व्यक्ति सदैव कष्ट ही पाता है।"

ऋग्वेद में भी इसका उल्लेख किया गया है-

बहुप्रजा निऋतिमाविवेश।

(ऋग्वेद 1.64. 32)

"अधिक संतान वाला व्यक्ति घोर कष्टों का अनुभव करता है।"

वर्तमान स्थिति में भारतीय संस्कृति, राष्ट्र, समाज और प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण और विकास को ध्यान में रखते हुए महाभारत में उल्लखित सूक्ति में दी हुई चेतावनी को हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।

बहवपत्यं दरिद्रता।

"अधिक संतान दरिद्रता का चिह्न है।"

सीमा से अधिक संतति का यह अभिशाप व्यक्ति और समाज को अवनति की ओर ले जाने वाला होता है। बाल्मीकी रामायण में भी कहा गया है कि -

कलौ सर्वे भविष्यंति स्वल्पायुर्बहुपुत्रकाः।

"जब लोगों के अधिक पुत्र हों तो समझो कलयुग आ गया है।"

राजस्थानी लोकोक्ति में भी इस बात का उल्लेख है-

"घणी बरखा कण हाण, धना पूत कुल हाण।"

वर्षा अधिक हो तो अन्नोत्पादन नहीं होता, पुत्र अधिक हों तो वंश नष्ट हो जाता है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन प्रतापी राजवंशों ने भारत का मान ऊँचा किया और भारतीय संस्कृति को उच्च पथ पर अग्रसर किया उनमें सीमित संतति यहाँ तक कि एक या दो ही प्रतापी संतानों की परंपरा चलती रही।

भारत के इतिहास में अयोध्या के रघुवंश को कौन नहीं जानता है? इस प्रतापी वंश में महाराज दिलीप के एक ही पुत्र हुए महाराज रघु, जिन्होंने दिग् विजय कर अपने कुल का नाम अमर किया। इनके भी एक पुत्र हुए महाराज अज और इनके भी एक मात्र पुत्र हुए महाराज दशरथ।

महाराज दशरथ के समय एक पत्नी-व्रत का अतिक्रमण हुआ और इनकी तीन पत्नियों के चार पुत्र हुए। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम ने पुनः

सामाजिक मर्यादाओं की प्रतिस्थापना की। उन्होंने स्वयं एक पत्नी-व्रत निभा कर समाज के सामने पुनः एक पत्नी-व्रत का आदर्श स्थापित किया और इनके दो ही तेजस्वी पुत्र हुए-लव और कुश। लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुध्न के भी दो-दो पुत्र हुए।

इस प्रकार यदि आज जबकि मानव समाज को अत्यधिक सुविधाएँ उपलब्ध होने से मृत्यु दर कम हो गई है, हमें यह विचार करना होगा कि जन्म-दर में भी उसी अनुपात में कभी आए और हमारे पास सभी के लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन, वस्त्र तथा मकान हों।

शतपथ (ब्राह्मण) ग्रंथ में सही कहा गया है-

तद्धि समृद्धं यत्रान्ता कनीयान् ॥ अधोभूयान्!

"खाने वाले कम हों और खाद्य-पदार्थ अधिक हों यही समृद्धि का रूप है।"

बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण रखने की दृष्टि से महान साहित्यकार रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा है कि-

"भारत जैसे क्षुधा पीड़ित देश में विवेक शून्य इतने बच्चों को जन्म देना, जिनका समुचित पालन पोषण नहीं किया जा सकता, निर्दयतापूर्ण अपराध है। ऐसी स्थिति में पैदा होने वाले बच्चे स्वयं कष्ट पाते हैं और साथ ही पूरे कुटुंब की दुरावस्था का कारण भी बनते हैं।"

यदि हमें परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र को समृद्धिशाली बनाना है तो इसका एक ही सरल उपाय है कि हम अधिक अन्न पैदा करें। अधिक उत्पादन करें। हमारी आर्थिक स्थिति अच्छी हो तथा हम अपने परिवार को सीमित करने पर विचार करें। इससे राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति खुशहाल ही नहीं होगा वरन् उसके स्वास्थ्य में वृद्धि होगी तथा वह अधिक आयु वाला होगा। आज प्रत्येक भारतीय को अथर्ववेद के निम्नलिखित सूक्ति के अनुसार बनने की जरूरत है-

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्षणोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिता केशाः अशोणा दन्ता बहु बाहवोर्बलम् ॥
क्षुण्णा ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभ्रष्टः॥

(अथर्ववेद सूक्त 19, 6, 60)

"मेरे मुख में वाणी, नासिका में प्राण, नेत्रों में दर्शन शक्ति, दाँत अक्षुण्ण और केश पलित रोग से रहित रहें। मेरी भुजाओं में रत्न रहें, उरूजों में ओज, जांघों में वेग और पैर में खड़े रहने योग्य शक्ति रहे। आत्मा अहिंसित और अंग पाप से मुक्त हों।"

इस प्रकार से हम देखते हैं कि सीमित परिवार की धारणा कोई नवीन प्रत्यय नहीं है अपितु यह प्राचीन काल से अनवरत चली आ रही है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद्, और महाकाव्यों आदि में इस धारणा की व्याख्या सर्वत्र की गई है। क्यों न हमारे शिक्षक बंधु इन धारणाओं को शिक्षण प्रक्रिया के माध्यम से छात्रों तक पहुँचाने के लिए प्रण कर लें। देश में सुख-समृद्धि लाने के लिए और बढ़ती हुई जनसंख्या पर अंकुश लगाने के लिए सीमित परिवार की धारणा को अपनाना ही होगा। आज इस बदलते हुए परिवेश में हमें अपने पुराने मूल्यों के साथ तादात्म्य स्थापित कर जीवन पथ पर आगे बढ़ने की जरूरत है। इस पथ का सही मार्गदर्शन अध्यापक वर्ग ही कर सकता है और कोई नहीं बशर्ते इस वर्ग का समाज, राज्य सरकार और केंद्र सरकार सहयोग प्रदान करें। ❑

विज्ञान और अंधविश्वास

● डॉ. दिनेश मणि

[विज्ञान अध्ययनों और खोजों द्वारा प्रकृति के विषय में नया ज्ञान अर्जित करके उसे व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। ज्ञान ही शक्ति है और प्रत्येक नई वैज्ञानिक जानकारी मानव को शक्तिशाली बनाने की दिशा में अगला कदम है। धर्म की उपलब्धियाँ द्वैधवृत्ति वाली हैं। अब वह समय आ गया है कि हम विज्ञान से थोड़ी सीख लें और ईश्वर से याचना करते रहने की बजाय विवेकपूर्ण ढंग से सुनिर्दिष्ट प्रयास करें। यह लेख इन्हीं बिंदुओं की विवेचना करता है।]

आज आधुनिक विज्ञान का प्रभाव मानव जीवन के बाह्य अंग तक सीमित नहीं है, वरन् उससे जनित एक नई प्रकार की मानसिकता ने मानव समाज की विचार पद्धति, संस्कृति और आध्यात्मिक दिशाओं तक को प्रभावित किया है। आज प्रत्येक विषय, प्रश्न या समस्या के अध्ययन की प्रायोगिक या तार्किक पद्धति अपनाई जा सकती है। विज्ञान की उपलब्धियों और मानवीय प्रगति में उसके योगदान को देखते हुए आज संसार भर में विज्ञान के पठन-पाठन तथा अनुसंधान पर बल दिया जा रहा है, परंतु बहुत-से स्थानों पर इन प्रयासों को पूर्ण सफलता इस कारण से नहीं मिल पाती क्योंकि वहाँ के समाज और वैज्ञानिकों ने विज्ञान के इस गूढ़तम मर्म को पूर्णतया स्वीकार नहीं किया है। वैज्ञानिक मानसिकता में

● पूर्व संपादक - विज्ञान (मासिक), 47/29, जवाहर लाल नेहरू रोड, जार्ज टाऊन, इलाहाबाद-211002

"अनुशासन" और "मतभेद" दोनों का ही महत्व है। विज्ञान के वर्तमान ज्ञान को समझने के लिए दीर्घकाल तक अनुशासित अध्ययन और परिश्रम नितांत आवश्यक है। साथ ही विज्ञान में किसी प्रकार के अंधविश्वास का कोई स्थान नहीं है। यदि किसी भी बड़े से बड़े वैज्ञानिक का विचार या वक्तव्य तर्क या प्रयोग की कसौटी पर खरा न उतरे तो उसको अस्वीकृत कर उसके संशोधन या उसमें परिवर्तन का प्रयत्न ही विज्ञान को प्रगति की ओर ले जाने का एकमात्र साधन है।

वैज्ञानिक अपने अनुभवों और उनके आधार पर कल्पित नियमों की परीक्षा और समीक्षा के लिए सदा तत्पर रहता है। परीक्षा के अनंतर वह असत्य विश्वासों को छोड़ने के लिए तत्पर रहता है और सत्य विश्वासों को ग्रहण करने के लिए चाहे ये कितने ही कटु क्यों न हों, प्रस्तुत रहता है।

विज्ञान शब्द अंग्रेजी शब्द साइंस का पर्याय है जिसके अर्थ होते हैं व्यवस्थित ज्ञान। व्यावहारिक रूप में भी विज्ञान के अध्ययनों और खोजों द्वारा प्रकृति के विषय में नया ज्ञान अर्जित करके उसे व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। विज्ञान की एक परिभाषा यह भी है कि यह ज्ञान की वह शाखा है जो इंद्रिय जन्य अनुभवों में तर्कसम्मत संबंध स्थापित करती है। इन संबंधों से प्राप्त निष्कर्षों को वैज्ञानिक पद्धति में नऐ अनुभवों, अवलोकनों या प्रयोगों की कसौटी पर परखा जाता है जिनकी सहायता से प्राथमिक निष्कर्ष या तो अधिक परिमार्जित किया जाता है या उसमें आवश्यक परिवर्तन किए जाते हैं जिससे कि नवीन अनुभव या प्रयोगफल भी इस निष्कर्ष के अनुकूल हो जाए। इन नए निष्कर्षों को फिर जाँचने परखने की प्रक्रिया जारी रहती है। ज्यों-ज्यों किसी निष्कर्ष की उपयोगिता का क्षेत्र बढ़ता जाता है और उसकी यथार्थता बहु परिस्थितियों में सही सिद्ध हो जाती है, त्यों-त्यों इस प्रकार के निष्कर्ष को वैज्ञानिक क्षेत्रों में क्रमशः परिकल्पना, सिद्धांत तथा नियम का स्तर मिलता जाता है। इस प्रकार विज्ञान की मुख्य उपलब्धि ही यह है कि इसके द्वारा निष्कर्षों, परिकल्पनाओं, सिद्धांतों और नियमों के अध्ययन की एक क्रमबद्ध चिंतन प्रणाली का विकास होता है। इस चिंतन प्रणाली का प्रमुख ध्येय भी यही होता है कि निष्कर्षों को यथासंभव वस्तु निरपेक्ष या तटस्थ भाव से प्राप्त किया जाए। अतः विज्ञान

या वैज्ञानिक प्रणाली में निरपेक्ष भाव, सार्वभौमिक तथा तर्कसंगत अध्ययन होना अनिवार्य है। कोई सिद्धांत तब तक वैज्ञानिक नहीं माना जाता जब तक वह इन कसौटियों पर खरा न उतरता हो।

आदि मानव प्रकृति की लीलाओं के विषय में कुछ नहीं जानता था। प्रकृति के अनेक दृश्य उसे बेहद प्रभावित करते थे। बिजली की कड़क सुनकर और कौंध देखकर वह भयभीत हो जाता था। सूर्य ग्रहण, जो दिन में अंधेरा कर देते थे, और चंद्र ग्रहण जो चांदनी रात को काली रात बना देते थे, उसके लिए रहस्य थे। ये सब अलौकिक या दैवी घटना समझे जाते थे। मृत्यु ने आदि मानव के मस्तिष्क पर एक अमिट छाप डाल दी थी। समय बीतते-बीतते धीरे-धीरे सोचने की शक्ति का विकास हुआ। वह अपने चारों ओर उत्सुकता और चाव से देखने लगा। उसे आश्चर्य हुआ और हर घटना के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई। यही विज्ञान और वैज्ञानिक स्वभाव का आरंभ था।

बहुत कम लोग विज्ञान का सही अर्थ समझते हैं। प्रायः अज्ञानवश विज्ञान का नाम उसके उत्पादों के साथ जोड़ दिया जाता है या दोनों को एक ही समझ लिया जाता है। यह सही है कि विज्ञान उपयोगी यंत्र को संभव बना देता है, परंतु विज्ञान यंत्र नहीं है। विचारों को वस्तुओं से मिलाना ठीक नहीं है। वायुयान ठीक उसी प्रकार विज्ञान नहीं है जिस प्रकार मंदिर धर्म नहीं है। विज्ञान की भौतिक अभिव्यक्तियाँ और शक्तियाँ चाहे वे कितनी भी लाभदायक, भयदायक, दानवीय अथवा सुंदर हों, भिन्न वर्ग की होती हैं।

जे. ए. थाम्सन ने अपनी पुस्तक "इंट्रोडक्शन टू साइंस" में कहा है कि "विज्ञान का लक्ष्य अनुभव के अवैयक्तिक तथ्यों का, सत्यापनीय शब्दों में, यथासंभव सही-सही, यथासंभव सरलता से और यथासंभव पूर्णता से वर्णन करना है।" एक वैज्ञानिक घटनाओं और दृश्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करता है, नियामानुकूलता का पता लगाता है, सामान्यीकरण करता है, निष्कर्ष निकालता है, और यह प्रक्रिया विधि-विधान में परिणत हो जाती है। इस प्रकार, विज्ञान तर्कपूर्ण निष्कर्षों और आनुभविक सूक्ष्म निरीक्षणों द्वारा सत्य पर पहुँचता है। प्रयोग में पुनरावृत्ति विज्ञान के आवश्यक सूक्ष्म अंग हैं। विज्ञान के अनुशासन में लेने से पूर्व प्रत्येक वस्तु

को प्रयोग के निष्कर्ष पर कस कर देखा जाता है। प्रमाण के बिना कोई वस्तु स्वीकार्य नहीं होती। हर चीज के बारे में प्रश्न किए जाते हैं और उसकी जाँच की जाती है। विज्ञान किसी ग्रंथ या व्यक्ति को प्रमाण नहीं मानता, चाहे वह ग्रंथ कितना ही प्राचीन हो अथवा वह व्यक्ति कितना ही महान हो। विज्ञान ने केवल सत्य के प्रति अपने आदर और निष्ठा के कारण प्रामाणिकता प्राप्त की है। विज्ञान पूर्णतया अवैयक्तिक है और किसी विज्ञानवेत्ता की रुचि या अरुचि पर निर्भर नहीं है। वैज्ञानिक का अपना कोई निहित स्वार्थ नहीं होता । विज्ञान ऐसे संबंध ढूँढ़ है जो ढूंढ़ने वाले व्यक्ति से अलग रह सकते हैं।

विज्ञान के सभी निष्कर्ष स्वभावत: प्रायोगिक होते हैं। वे आँकड़ों और नए अनुभवों के प्रकाश में संशोधित किए जाते हैं। इसे सत्य के ज्ञान का वैज्ञानिक व्यवहार या वैज्ञानिक विधि कहा जाता है। विज्ञान का असली महत्व उसकी व्यावहारिक उपलब्धियों पर निर्भर नहीं है, चाहे वे तुच्छ हों या महान, बल्कि तकनीक पर निर्भर है। यह वैज्ञानिक विधि विश्वव्यापी है तथा यह किसी समस्या को केवल समझने का ही नहीं, उसका समाधान ढूंढ़ने के प्रयत्न का भी अति शक्तिशाली साधन है।

विज्ञान ने धार्मिक मताग्रहों और अंधविश्वासों के विरुद्ध एक लंबे और भीषण युद्ध में तिल तिल लड़ कर बड़ी कठिनता से यह शक्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त की है। अंधनिष्ठा के विरुद्ध यह लड़ाई अभी जारी है। यद्यपि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपार प्रगति हुई है, फिर भी वह बड़े खेद का विषय है कि वैज्ञानिक स्वभाव में उतनी वृद्धि नहीं हुई। हमारे समय के एक वस्तुत: महान जैव रसायनशास्त्री और अपनी सरकार के मुख्य विज्ञान-परामर्शदाता, इंग्लैंड के लार्ड टाड ने कहा है-"विगत एक सौ वर्षों में सभ्यता के भौतिक रूपों में जितना परिवर्तन हुआ है, उतना निश्चय ही मानव जाति के समस्त पूर्वकालिक इतिहास में नहीं हुआ था... तथा जो भी परिवर्तन हुए हैं, उनका श्रेय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के आधुनिक रूप को दिया जा सकता है, प्रौद्योगिकी जिसे उद्योग, कृषि, चिकित्सा, प्रतिरक्षा और प्रशासन की समस्या पर वैज्ञानिक विधियों और वैज्ञानिक अनुसंधानों के परिणामों का प्रयोग कह सकते हैं। परिणामत: विज्ञान और प्रौद्योगिकी संप्रति सार्वजनिक और निजी जीवन

के लगभग प्रत्येक पहलू में उपस्थित है तथा उन्होंने हमारी सामाजिक व्यवस्थाओं पर, जो शताब्दियों से शनै: शनै: विकास पथ पर अग्रसर हैं, भारी प्रभाव डाला है। दुख का विषय यह है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी जितनी तेजी से आगे बढ़ती है, उतनी तेजी से सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन नहीं होता। वैज्ञानिक और सामाजिक परिवर्तन की गति में जो असमानता है, वही आज संसार के अधिकांश कष्टों और तनावों का मूल कारण है।"

वैज्ञानिक विचार-पद्धति में इस बात का कोई विशेष महत्व नहीं है कि विज्ञान के किसी सिद्धांत या नियम को किस बड़े से बड़े वैज्ञानिक ने प्रतिपादित किया है। प्रत्येक सिद्धांत या नियम भी वैज्ञानिक क्षेत्रों में तभी तक सर्वमान्य रूप से स्वीकृत रहता है जब तक उसके द्वारा नवीनतम प्रयोगों के समस्त अवलोकनों या अनुभवों को उस नियम द्वारा समझाया जा सके और उन दोनों में कोई विरोधाभास प्रकट न हो। विज्ञान के क्षेत्र में आवश्यकतानुसार किसी भी नियम को संशोधित या परिवर्तित किया जाना संभव है और सच तो यह है कि विज्ञान की तीव्र प्रगति का मूल कारण इसी वैचारिक स्वातंत्र्य में निहित है। उदाहरण के लिए पेड़ से जमीन की ओर गिरते हुए सेव से न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था जिसने कुछ वर्षों में न्यूटन के प्रसिद्धि "गतिशीलता नियमों" का विस्तृत तथा परिष्कृत रूप ले लिया था। प्रकाश की गति संबंधी कुछ प्रयोगों के परिणामों को समझाने के प्रयत्न में आइन्सटाइन को न्यूटन के इन नियमों में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई और फलस्वरूप सापेक्षवाद का जन्म हुआ। आइन्सटाइन के विचारानुसार प्रकाश की गति प्रकृति की सर्वोच्च गतिशीलता है और कोई भी कण इससे अधिक गति से नहीं चल सकता है। सापेक्षवाद सिद्धांत ने भौतिकी शास्त्र तथा विज्ञान की अन्य शाखाओं में एक क्रांति ही उत्पन्न कर दी और फलस्वरूप आइन्सटाइन को इस युग का सबसे बड़ा वैज्ञानिक माना गया। साथ ही न्यूटन की प्रतिष्ठा में उसके द्वारा प्रतिपादित नियमों में संशोधन की आवश्यकता से कोई कमी नहीं आई है क्योंकि अपने समय में उपलब्ध अवलोकनों या अनुभवों को विश्लेषित कर उन्हें तर्कसंगत नियमों के सूत्र में बाँधना ही उसके जैसे मेधावी मस्तिष्क द्वारा ही

संभव था। आज तो आइन्सटाइन के निष्कर्षों पर भी कुछ क्षेत्रों में संदेह प्रकट किया जाने लगा है, उदाहरण के लिए एक भारतीय ने सैद्धांतिक रूप से प्रकाश की गति से अधिक तेज चलने वाले सूक्ष्म कणों की परिकल्पना प्रस्तुत की है जिस पर पिछले कुछ वर्षों से विवाद चल रहा है।

वस्तुत: प्रकृति के रहस्यों पर से पर्दा उठाने की आकांक्षा को वैज्ञानिक मनोवृत्ति कहते है। इसका यह भी अर्थ है कि किसी भी तथ्य को तब तक सच नहीं मानना चाहिए जब तक पूरी तरह से जाँच करके सत्य को प्रमाणित न कर लिया जाए। विश्वसनीय जानकारी वही है जो तथ्यों या घटनाओं की यथार्थ रूप में ठीक उसी प्रकार व्याख्या करे, जिस रूप में वे प्रकृति में घटित होती है। इस प्रकार यह जानकारी हमें वांछित परिणाम प्राप्त करने में सूक्षम बनाती है अथवा अवांछित घटनाओं पर रोक लगाती है। विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति तथा इसके अनगितन वरदान, ज्ञान की खोज में वैज्ञानिक विधियों को दृढ़ता से लागू करने का परिणाम हैं।

पिछले अनेक वर्षों के दौरान विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक विधियाँ इतनी भली प्रकार स्थापित हो गई हैं कि उन्हें विज्ञान शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल करने की कोई आवश्यकता ही महसूस नहीं की गई। हालाँकि विज्ञान में वैज्ञानिक विधियाँ बहुत आम है, परंतु जीवन के अन्य क्षेत्रों में इनका बहुत ही कम अथवा बिलकुल ही असर नहीं हुआ है। यहाँ तक कि आज भी वैज्ञानिक पृष्ठभूमि वाले बहुत-से लोग धर्म को वैज्ञानिक मनोवृत्ति और विचारधारा से बिल्कुल अलग मानते हैं।

चाहे जो भी हो पर एक बात स्पष्ट है, यदि मनुष्य प्रकृति के रहस्यों पर से पर्दा उठाने और इसकी शक्तियों का अपने कल्याण के लिए उपयोग करना चाहे तो उसमें ऐसा करने की क्षमता विद्यमान है। और यह कार्य जितना लाभदायक है, उतना ही चित्ताकर्षक भी है। ज्ञान ही शक्ति है और प्रत्येक नई वैज्ञानिक जानकारी मानव को शक्तिशाली बनाने की दिशा में अगला कदम है। लेकिन एक बात सदैव याद रखनी चाहिए कि मानव कितना भी अधिक शक्तिशाली क्यों न हो जाए, वह प्रकृति पर पूर्ण नियंत्रण कभी नहीं प्राप्त कर पाएगा। परंतु वह प्रकृति के नियमों की

जानकारी प्राप्त करके और उनका निष्ठापूर्वक पालन करके प्रकृति को अपना मित्र, अपना सहायक अवश्य बना सकता है। इसीलिए वैज्ञानिक प्रगति एक आवश्यकता है, परंतु इसे प्राप्त करने के लिए परंपराओं, अंधविश्वासों अथवा पूर्वाग्रहों से पूरी तरह मुक्त होकर मानव जाति के सामूहिक विवेक और वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करते हुए सत्य की अनवरत खोज आवश्यक होती है।

वैज्ञानिक ज्ञान और इसके उत्पादों का गलत उपयोग भी हो सकता है। परंतु इसमें विज्ञान का कोई दोष नहीं होता, ठीक उसी तरह जैसे यदि मनुष्य अपने मस्तिष्क, नेत्रों और हाथों का उपयोग घृणित कार्यों के लिए करे तो इसमें इन अंगों का कोई दोष नहीं है।

अपनी प्रेरक पुस्तक "दि इसेंशिएल यूटीलिटी ऑफ आल रिलीजन" में भगवान दास (भारत रत्न) लिखते हैं, "अच्छी वस्तु की अधिकता भी खराब होती है.... बहुत अधिक धर्म ईश्वर को और मनुष्य के भीतर देवता को मार देता है, उसे हर प्रकार के भय से मुक्ति दिलाने की बजाय उसे अंधविश्वासों का गुलाम बना देता है।" इतिहास इस बात का गवाह है: जहाँ कहीं भी धर्म की अधिकता हुई है, उसने सद्गुणों और विवेक दोनों को अस्थिर करने का प्रयास किया है।

विज्ञान जिस विश्व का अध्ययन करता है वह सार्वभौम, अटल और अपने बनाए नियमों से शासित होता है। हम आसानी से अज्ञान का बहिर्वेशन कर सकते हैं और इस बात को स्वीकार कर सकते हैं कि मानव की सक्रियता और निष्क्रियता भी पहले से तय नियमों के नियंत्रण में है। यह मनुष्य के ऊपर निर्भर करता है कि वह उपयुक्त कार्यों से सफलता और प्रसन्नता प्राप्त करे। अलौकिक अथवा सर्वशक्तिमान के पास अपील से प्रकृति के कानून की कार्यवाही निरस्त नहीं हो सकती और न ही यह सुनिर्देशित मानव प्रयासों का स्थान ले सकती है।

वैज्ञानिकों ने प्रकृति के एक बहुत ही महत्वपूर्ण नियम की खोज की है, जिसके अनुसार अपने भाग्य पर छोड़ दी गई वस्तुओं में अपक्षय अथवा सड़ने-गलने, विकृत होने, खराब होने और विघटित हो जाने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। धर्म को पवित्र और स्वयं ईश्वर से प्रकट हुआ माना जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि यह सदैव शुद्ध और परिपूर्ण होता है। परंतु वास्तव में अन्य मानव संस्थानों की तरह क्षय होने

का नियम इस पर भी लागू होता है। छुआछूत, जातिवाद, सांप्रदायिकता, धर्मों के बीच आपस में घृणा और हिंसा तथा उचित आचरण और प्रेममय सेवा के स्थान पर विश्वास और पूजा-आराधना आदि सभी नियम के रहने के उदाहरण है। इसे बर्बरता की ओर जाने से बचाने के लिए लगातार निगरानी और धर्म से तंतुजालों को निकाल फेंकना आवश्यक है।

विज्ञान की अभूतपूर्व सफलता का श्रेय इस सत्य को जाता है कि यह अपना अध्ययन केवल प्राकृतिक घटनाओं तक ही सीमित रखता है और प्रकृति के रहस्यों पर से पर्दा उठाने के लिए तथा उसके अक्षम संसाधनों को अपने काम में लाने के लिए विज्ञान ने केवल प्राकृतिक, उद्देश्यपूर्ण और धर्म निरपेक्ष माध्यमों का प्रयोग किया है। विज्ञान अपना लक्ष्य प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए मानव प्रयासों से प्राप्त करता है और इसके लिए अलौकिक व्यक्तियों और अलौकिक शक्तियों की सहायता नहीं लेता। दूसरी ओर धर्म मानव प्रयासों पर भरोसा न करके लगभग पूरी तरह शुद्ध रूप से धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से प्राप्त दिव्य शक्तियों की कृपा पर भरोसा करता है। इसका परिणाम यह है कि जहाँ विज्ञान ने हर क्षेत्र में आश्चर्यजनक कार्य किए हैं, वहीं दूसरी ओर धर्म की उपलब्धियाँ द्वैधवृत्ति वाली हैं और मानव को बेहतर जीवन तथा विश्व को प्रसन्नता देने में असफल रही हैं। ऐसा होना भी था, क्योंकि जब स्वयं अलौकिक साधनों से मानव की भोजन और जल संबंध ी मौलिक आवश्यकताएँ नहीं पूरी की जा सकतीं, तो वे मानव जाति और पूरे विश्व की काया पलट कैसे कर सकते हैं?

शताब्दियों के अनुभव से इस बात में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रहती कि प्रकृति के संसार में प्राकृतिक अथवा सांसारिक उपायों का सहारा लिए बिना कुछ भी नहीं हासिल किया जा सकता। अब वह समय आ गया है कि हम विज्ञान से थोड़ी सीख लें और ईश्वर से याचना करते रहने की बजाय विवेकपूर्ण ढंग से सुनिर्दिष्ट प्रयास करें । दूसरे शब्दों में आवश्यकता इस बात की है कि हम स्वानुशासन, उचित आचरण, कर्तव्य के प्रति समर्पण, सभी के प्रति स्नेहमय सेवा और सहयोग की भावना को ईश्वर में विश्वास और आराधना के साथ जोड़ दें, क्योंकि अपनी वसुंधरा को स्वर्ग बनाने के सपने को साकार करने के लिए ये सभी साधन अपरिहार्य हैं।

पिछले 50-60 वर्षों में रसेल तथा व्हाइटहेड ने ऐसे तार्किक प्रत्यक्षवाद के सिद्धांत को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है। इस सिद्धांत के अनुसार वैज्ञानिक सत्य केवल वही है जो प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा सिद्ध किया जा सके। यद्यपि यह दृष्टिकोण लगभग सभी स्थितियों में लागू होता है, परंतु एक अन्य नोबेल पुरस्कार विजेता हाइजेनबर्ग द्वारा गवेषित अनिश्चितता सिद्धांत से इस तार्किक सिद्धांत की सीमाएँ भी स्पष्ट हुई हैं। इसके अनुसार सूक्ष्मतम तथ्य को मापने वाली सक्षम से सक्षम विधियाँ तथ्य को इतना प्रभावित या परिवर्तित कर देती हैं जिससे इसका निश्चयपूर्ण निर्धारण असंभव हो जाता है।

इस दार्शनिक अपूर्णता के अतिरिक्त नित्य के साधाराण कार्य भी विज्ञान की असीम संभावनाओं से परिचित विज्ञान के सच्चे विद्यार्थी को अपनी दृढ़ता और असमर्थता की अनुभूति रहती है। अपनी उच्चतम सफलताओं के बीच में भी उसमें यही भावना सर्वोपरि रहती है कि वह तो प्रकृति रूपी समुद्र के तट पर खड़ा केवल पत्थर गिन कर उनमें से एकाध को पहचानने का प्रयास कर रहा है, जबकि उसके भेदों का अथाह सागर अभी अछूता लहरें ले रहा है।

विज्ञान की प्रगति द्वारा प्राप्त आत्मविश्वास की सहायता से प्रकृति के अनबूझे प्रश्नों से जूझता वैज्ञानिक इसी दृष्टिकोण से तिमिड़ अंधकार को चीरता हुआ प्रकाश की किरणों को मानव हित में उजागर करने में निरंतर प्रयत्नशील है। उसके इस दृष्टिकोण को साधारण समाज भी अपना सके तो समाज के साथ ही साथ विज्ञान के प्रयत्नों को अधिक बल मिल सकेगा।

❑

उच्च रक्तचाप

● डॉ. भीमसेन बेहेरा

आजकल की व्यस्त दिनचर्या में मानसिक तनाव, थकान आदि अनेक बीमारियों की लंबी सूची है। उच्च रक्तचाप भी उन्हीं में से एक है यद्यपि यह रोग धनाढय वर्ग का रोग कहा जाता है परंतु अब भारत की जनसंख्या का हर वर्ग इससे प्रभावित हुआ है। आधुनिक युग में भौतिक विकास एवं आर्थिक संपन्नता के कारण मनुष्य के खान-पान, रहन-सहन एवं दैनिक जीवन में अनेक परिवर्तन आए हैं परंतु इसके साथ-साथ मानसिक तनाव, व्यस्त दिनचर्या, रात्रिचर्या, दूषित वातावरण, अप्राकृतिक आहार एवं खानपान में कृत्रिम अंशों का प्रयोग भी अनेक व्याधियों का जनक बना है। जो संभवत: पहले न थीं। रक्तचाप इन्हीं में से एक है। यह हृदय रोगों का मुख्य कारण माना गया है। यह एक ऐसा रोग है जो शुरू में बहुत कम लक्षणों के साथ प्रकट होता है; अत: बहुत-से लोगों को अपने बढ़े हुए रक्तचाप का ज्ञान नहीं हो पाता। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने भारत को उच्च रक्तचाप का राष्ट्र घोषित कर दिया है। ऐसा नहीं है कि आयुर्वेद इस व्याधि से अछूता रहा परंतु वेदों, उपवेदों से ही वह किसी न किसी रूप में वर्णित होगा, इनके लक्षण उस समय गंभीर रूप में नहीं पाए जाते होंगे क्योंकि उस समय के लोगों का जीवन शांतमय रहा होगा। यह आधुनिक युग का सबसे उच्चकोटि का रोग माना गया है। जहाँ तक आयुर्वेद के आचार्यों का

● सहायक वैज्ञानिक अधिकारी, आयुर्विज्ञान, वै. त. श. आयोग, पश्चिमी खंड -7, आर. के. पुरम, नई दिल्ली -110022

संबंध है उन्होंने इस रोग का नामकरण अपने-अपने अनुसार लक्षणों के आधार पर किया है। इनमें भी इसे त्रिदोष व्याधि के रूप में लिया गया है। जिसमें वातदोष प्रमुख है।

उच्च रक्तचाप एवं आयुर्वेद

आयुर्वेद में वस्तुत: स्पष्ट उच्च रक्तचाप का वर्णन नहीं मिलता अपितु ऐसे कई लक्षणों एवं व्याधियों का वर्णन है जो किसी न किसी रूप में उच्च रक्तचाप से संबंधित हैं। आयुर्वेद के इतिहास को देखें तो ज्ञात होगा कि वेदों में हृदय के कार्य, धमनियों का वर्णन, ब्राह्मण एवं उपनिषदों में हृदय शब्द की व्युत्पत्ति एवं निरुक्ति तथा रस रक्त परिभ्रमण का वर्णन मिलता है। उसी प्रकार स्कंद पुराण में हृदय को साधक पित का स्थान बतलाया गया है। चरक संहिता में हृदय को रस रक्तवह स्रोतस, मूलम् कहा गया है। इसी प्रकार सुश्रुत संहिता, काश्यप संहिता, अष्टांग संग्रह इत्यादि हमारे आयुर्वेद के आर्ष ग्रंथों में हृदय व उसके कार्यों का वर्णन यत्र तत्र मिलता है।

उच्च रक्तचाप का निर्णायक तो Sphigmonometer के अविष्कार के बाद ही हुआ परंतु उससे पहले लक्षणों के आधार पर निर्णय करते रहे।

आयुर्वेद में उच्च रक्तचाप को निम्न व्याधियों के अंतर्गत ले सकते हैं :-

रक्तगतवात

यह व्याधि रूप न होकर वात नानात्मज व्याधि है। इसका पूर्वरूप अव्यक्त माना गया है।

लक्षण :

तीव्ररुजा शरीर में भारीपन
संताप रुक्षता
वैवर्ण्य चक्कर आना
कृशता
भूख न लगना

इसे कुछ आचार्य वातरक्त की पूर्व अवस्था भी मानते हैं।

सिरागतवात

यह अति संक्षेप में वर्णित है :

लक्षण :

मंदपीड़ा सिराओं में खालीपन

शोथ

स्पर्शनाश

सिरा का सिकुड़ना

सिरा का भरना

परंतु इसके संपूर्ण लक्षण उच्च रक्तचाप से नहीं मिलते।

रक्तवात

इसका वर्णन योगरत्नाकर ने किया है।

लक्षण :

पाददाह- रक्त का बहना

शरीर में चक्कते - धड़कन लगना

साँस में तकलीफ

थकान

रसक्षय

कुछ विद्वान इसकी रसक्षय से तुलना करते हैं परंतु रसक्षय की चिकित्सा उच्च रक्तचाप की चिकित्सा से बिलकुल विपरीत है।

आवृतवात :- पितावृतवात

लक्षण

दाह–चक्कर

शूल–आँखों के आगे अंधेरा

प्यास लगना–ठंड लगना

पितावृत उदान

शरीर में दाह - चक्कर

मूर्च्छा - थकान

रक्तावृत वात

मांस त्वचा में जलन -चक्कते

वेदना

प्राणावृत उदान

सिर का जकड़ना हृदयरोग

जुकाम मुख का सूखना

अत: इन वर्णनों से स्पष्ट है कि रक्तचाप अधिकता जैसी व्याधि का वर्णन आयुर्वेद में एक व्याधि के रूप में नहीं था। संभवत: यह व्याधि दोष लक्षणों के आधार पर ही चिकित्सारत थी। उच्च रक्तचाप के लक्षण कुछ उपद्रवहीन माने गए हैं तथा कुछ उपद्रव युक्त।

उपद्रवहीन लक्षण :

- सिर में दर्द
- चक्कर
- मन का एकाग्र न होना
- थकान
- थोड़ा कार्य करने पर ही थकावट महसूस होना
- हृदय की धड़कन बढ़ना
- कानों में आवाजें आना
- बिना किसी कारण के गुस्सा आना

उपद्रवयुक्त लक्षण : इसमें अवयव विकृति के लक्षण मिलते हैं

- हृदय में शूल
- पैरों में सूजन
- नजर कम होना
- रक्त की कमी
- शरीर का पीला पड़ना

रोगी परीक्षा

उच्च रक्तचाप को मापना यंत्र के द्वारा संभव है यह यंत्र रोग की अवस्था का भी सूचक है।

आरंभिक रक्तचाप वृद्धि

140/90 से 160/100 mm of Hg.

अल्प रक्तचाप वृद्धि

160/100 से 180/110 mm of Hg.

मध्यम रक्तचाप वृद्धि

180/110 से 200/120 mm of Hg.

प्रवर रक्तचाप वृद्धि

200/120 से 220/140 mm of Hg.

घातक रक्तचाप वृद्धि

220/140 से ज्यादा

उच्च रक्तचाप मापक यंत्रों के अलावा ECG, X-Ray, मूत्र परीक्षा, रक्त की परीक्षा, वृक्क परीक्षा भी करवानी चाहिए।

ECG से हृदय के आकार की वृद्धि

X-Ray हृदय के आकार की वृद्धि

मूत्र परीक्षा :- शर्करा, प्रोटीन, Specific gravity.

रक्तपरीक्षा :- Hb, S. Urea, S. Creatinine, Cholestrol इत्यादि

वृक्क परीक्षा :- I.U.P., Ultrasound, Angiography भी करवाएँ।

चिकित्सा

इस रोग की चिकित्सा दो भागों में बाँटी गई है :

1. सामान्य चिकित्सा
2. औषध चिकित्सा

सामान्य चिकित्सा :-

- सबसे पहले रोगी को आश्वासन दें कि व्याधि साध्य है तथा विश्वास दिलाएँ की वह शीघ्र ठीक हो जाएगा।
- रोगी के वातावरण में परिवर्तन लाएँ।
- पूर्ण निद्रा व विश्राम का सेवन करवाएँ।
- मन की शांति के लिए उपवास, मंगल चारण, पाठ, ध्यान, समाधि, योग आदि क्रिया का सेवन करवाएँ। श्वसन के द्वारा मन व शरीर को भार मुक्त करें।
- सुबह-शाम 15 मिनट सैर करें।
- सूर्य को जल दें तथा सूर्य नमस्कार आसन करें।
- व्यायाम द्वारा शरीर के अतिरिक्त भार को कम करें।
- लवण एवं वसा का उपयोग कम करें।
- मद्यपान व धूम्रपान का त्याग करें।
- मांस, मधु, घृत, गुड़ इत्यादि वस्तुओं का परहेज करें।
- नियमित कोष्ठ को शुद्ध रखें तथा दिल दिमाग से अतिरिक्त भार को कम करें व खुश रहें।

औषध चिकित्सा :

- आयुर्वेद में सर्पगंधा का उपयोग उच्च रक्तचाप में हजारों वर्षों से हो रहा है।
- रसायन / मेध्य औषधियों का प्रयोग करें जैसे जटामांसी, अश्वगंधा. शंखपुष्पी, वचा, ब्राह्मी।
- मेद व रक्त भार को कम करने हेतु गुगल व शिलाजीत का प्रयोग करें।
- मूत्रल औषध भी उच्च रक्तचाप को कम करती है जैसे पुनर्नवा, गोक्षुर इत्यादि।

इनका उपयोग उच्च रक्तचाप में बहुत हो रहा है।

❑

शिवंकरी 'औपनिषद् संस्कृति'

● डॉ. जितेंद्र शर्मा

[नैतिक आदर्श और आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि से अनुप्रमाणित भारतीय औपनिषद् संस्कृति विश्व-मानव के ऐहिक और पारलौकिक जीवन में शांति और आनंद का संचार करने में सक्षम है। विशेष रूप से पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से संत्रस्त होकर डूबते विश्व को बचाने की नौका है औपनिषद् संस्कृति। जनसंख्या विस्फोट, पर्यावरण, वैयक्तिक कुंठा, तनाव आदि सभी समस्याओं का निदान हम औपनिषद् संस्कृति में खोज सकते हैं। इसलिए औपनिषद् संस्कृति कल्याणमयी शिवंकरी है।]

'यूनान, मिस्र, रोमाँ सब मिट गए जहाँ से
अब भी मगर है बाकी नामोनिशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा' - 'मो. इकबाल'

'In the whole world there is no religion or philosophy so sublime and elevating as the Vedant. This Vedant has been the solace of my life and it will be the solace of my death.' -'शापनहावर'

मोहम्मद इकबाल और शापनहावर के उक्त भावोद्‌गार परस्पर विरोधी दो संस्कृतियों– अध्यात्मवादी और भौतिकवादी के संघर्षजन्य

● प्रवक्ता, दर्शनशास्त्र, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्‌यालय, चित्रकूट, सतना (म. प्र.)

ऐतिहासिक परिणाम को उद्‌घाटित करते हुए भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति के कालजयी प्रवाह को रूपायित करते हैं।

जड़वाद और भोगवाद को बेतहाशा गले लगाता हुआ भारतीय समाज संप्रति चाहे-अनचाहे सांस्कृतिक गुलामी की तरफ बढ़ रहा है। पाश्चात्य भोगवादजन्य उत्तर आधुनिकता ने व्यक्तिगत और अलगाववाद को बढ़ावा दिया है। अंधाधुंध बढ़ती हुई आवश्यकताएँ, पाश्चात्य फैशन और रीतिरिवाज का दबाव, आवश्यकतापूर्ति के साधनों की सीमितता जहाँ एक तरफ व्यक्ति को अपने पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन में अशक्त बना रही है, परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार का परंपरागत ढाँचा चरमरा रहा है। वेश्यालयों, अनाथालयों और वृद्‌धाश्रमों की संख्या बढ़ रही है, वहीं दूसरी तरफ इस प्रवृत्ति से सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार को खुली छूट मिली है। भोग की उद्‌दाम अतृप्त इच्छाएँ अंततः हताशा, कुंठा, अवसाद, आत्महत्या, हिंसा, सांप्रदायिकता तथा आतंकवाद जैसी समस्याओं को जन्म देती हैं। कम से कम समय में अधिकाधिक धनार्जन की लालसा ने मनुष्य की वैयक्तिक सुख-शांति को नष्ट कर दिया है। मनुष्य संत्रस्त है। वह तरस रहा है आनंद और सुख के लिए पर सुख का कहीं नामोनिशान उसे उपलब्ध नहीं होता। डॉ. राधाकृष्णन का मंतव्य है- 'यह कहना कि मानव जाति आज इतिहास के एक महत्तम संकट से गुजर रही है, एक सामान्य सत्य है। हमारी यह संकटापन्न स्थिति मानवात्मा के साथ विज्ञान और प्रौद्‌योगिकी की आश्चर्यजनक गति का सामंजस्य न होने के कारण उत्पन्न हुई है'।[1]

विश्व संस्कृति की इस संत्रास की वेला में शाश्वत औपनिषद् संस्कृति डूबते विश्व को बचाने की नौका है। इसके महनीय मूल्य विश्व समुदाय के लिए क्षेमकर और ऊर्जास्पद हैं। जिन नैतिकों मूल्यों के द्‌वारा औपनिषद् संस्कृति-सरिता से विश्व कल्याण की अजस्र धारा प्रभावित हो रही है, उनमें से प्रमुख बिंदुओं का विश्लेषण इस आलेख के लघुकलेवर में अवलोकनीय है-

भोग्य पदार्थों का उत्कृष्टतम और अधिकतम मात्रा में अर्जन संप्रति विकास का मापदंड बन चुका है। वस्तुतः यही सोच, यही जीवन दर्शन सारी समस्याओं की मूल है। पाश्चात्य भोगवाद से विरासत में मिली

पूँजीवादी व्यवस्था और अधिकाधिक अर्थसंचय की प्रवृत्ति ने एक तरह जहाँ मानवीय आवश्यकताओं को असीमित कर दिया है वहीं उपभोग के दावानल को और हवा प्रदान की है। परंतु अर्थपिपासु मानव को यह पता ही नहीं है कि उपभोग की इस पिपासा और भौतिकता की अंधी दौड़ का कहीं अंत ही नहीं है क्योंकि कामनाओं के उपभोग से कामनाएँ शांत नहीं होती हैं बल्कि वे उसी तरह से और वृद्धिगत होती जाती हैं जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि ज्वाला और प्रदीप्त हो जाती है। औपनिषद् नीतिशास्त्र आवश्यकताओं को बढ़ाने और उनकी पूर्ति के साधनों की तलाश में ही पर्यवसित नहीं होता है। यमराज द्वारा सहज ही दिए जा रहे संपूर्ण स्वर्गिक सुख को नचिकेता ने लोष्ठवत् ठुकरा दिया–

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके
सर्वान् कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व
इमा रामाः सरथा सतूर्या
नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः
आभिर्मत्तप्रत्ताभिः परिचारयस्व
नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षी।।[2]
'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो'[3]
न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढ़म्
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।[4]

कामोपभोग को ही जीवन का परमध्येय मानने वाले नरकगामी होते हैं। वे जीवन के मूल उद्देश्य को भूल चुके हैं।[5] औपनिषद् सांस्कृतिक नैतिक व्यवस्था में आनंद और व्यक्ति के बीच में वैभव की मध्यस्थता आवश्यक नहीं है। समस्त राजभोगों और कंचन-कामिनी का परित्याग करके भी साधकों ने अलौकिक आनंद का अनुभव किया है। यदि उक्त सांस्कृतिक आदर्श को विश्व समुदाय आज अपना ले तो जन-जन के बीच अर्थ के वैषम्य से उत्पन्न मालिन्य और कलुषता को दूर किया जा सकता है। परिणामस्वरूप भ्रष्टाचार के दानव का सदा-सर्वदा के लिए अंत किया जा सकता है। "21वीं शताब्दी की आर्थिक चुनौती का सामना

उत्पादन की वृद्धि से संभव नहीं है। इसके लिए आश्रम व्यवस्था, अपरिग्रह और त्याग के द्वारा उपभोग का परिसीमन अनिवार्य है।"[6]

यही कारण है कि भौतिक दृष्टि से संपन्न राष्ट्र भी आत्मशांति हेतु इस औपनिषद् सांस्कृतिक आदर्श के प्रति श्रद्धावनत हैं।

सत्य का आदर्श तो भारतीय संस्कृति का मूल ही है। **सत्यं वद! धर्मं चर। सत्यान्नप्रमदितव्यं। धर्मान्न प्रमदितव्यं।**[7] आदि मंत्रों के माध्यम से वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में सदाचरण और धर्माचरण का निर्देश दिया गया है। मुंडकोपनिषद् तो यहाँ तक घोषणा करता है कि सत्य की ही विजय होती है और सत्य से ही मोक्षमार्ग भी प्रशस्त होता है। **''सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पंथा विततो देवयानः।''**[8]

जीवन में असत्यवाद और कदाचरण से वैयक्तिक और सामाजिक जीवन पतनोन्मुख होता है। यदि व्यक्ति वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में सत्पथ का अनुगमन करता रहे तो छल-कपट, बेईमानी, भ्रष्टाचार, घूसखोरी जैसी ढेर सारी बुराइयों का मूलोच्छेदन संभाव्य है। मन, वाणी और कर्म का विरोधाभास आज के बहुसंख्यक राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों का सार्वजनिक चरित्र बन गया है। गृहस्थ जीवन हो या व्यापारिक जीवन अथवा नागरिक जीवन भोगवाद के छाँवतले सर्वत्र मिथ्याप्रलाप और मिथ्याचरण का बोलबाला है। जबकि औषनिषद् ऋषि मन और वाणी के समरूप होने की ईश्वर से प्रार्थना करता है। निम्न ऋचा के माध्यम से निर्दिष्ट मानवीय कर्त्तव्य मानों मानव जीवन की संपूर्ण आचार संहिता ही है–

ऋतं च स्वाध्याय प्रवचने च। सत्यं च स्वाध्याय प्रवचने च.... .....राथीतरः।[9]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यद्यपि वैयक्तिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जीवन में परिव्याप्त अशांति और कलुषता के कुहासे को सत्य और प्रेम की प्रदीप्त ज्योति से ही दूर किया जा सकता है।

पूँजीवादी और भोगवादी अर्थ दर्शन ने व्यक्ति और समाज के अन्योन्याश्रित मधुर संबंधों को तार-तार कर दिया है। नितांत परिग्रही सोच ने संयुक्त परिवार के ताने-बाने को जहाँ व्यक्ति बचपन से ही सेवा, सहयोग, सामंजस्य, समर्पण और त्याग का प्रारंभिक पाठ सीखता था,

तहस-नहस कर डाला है। आज व्यक्ति समूह का अंश न होकर वैयक्तिक इकाई मात्र बनकर रह गया है, पड़ोसी के दु:ख-दर्द के आँसू पोंछने का न उसके पास समय है और न उसके सुख में हर्षित होने की ललक है। परिणामस्वरूप वैयक्तिक और सामाजिक हितों में सर्वत्र टकराव के स्वर अनुगुंजित हैं। अतिथि सेवा का औपनिषद् सांस्कृतिक आदर्श व्यक्ति और समाज के मृतप्राय अंतर्संबंधों के लिए संजीवनी बूटी के सदृश है। यह आदर्श व्यक्ति और समाज में परस्पर पूरकता, सहयोग, सहअस्तित्व, सामंजस्य और समरसता का पाठ पढ़ाता है। **'जो मनुष्य अपने घर आए हुए अतिथि की अधिक आदर-सत्कार पूर्वक उत्तम भाव से विशुद्ध सामग्रियों द्वारा सेवा करता है..... उसको भी उत्तम भाव से अन्न प्राप्त होता है।'**[10]

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव और अतिथि देवो भव की ऋचा व्यक्ति और समाज के मधुर अंतर्संबंधों का महनीय आचारशास्त्र ही है।

धर्म मानव जीवन का अनिवार्य तत्व है। लौकिक एवं पारलौकिक सत्य को जानने की अदम्य अभिलाषा धार्मिक चेतना के रूप में मानव सभ्यता के साथ ही स्वअस्तित्व में आई। धर्म को लौकिक अभ्युदय और नि:श्रेयस की सिद्धि का परम माध्यम स्वीकार किया गया। परंतु आज धार्मिक सांप्रदायिकता विश्वसंस्कृति के समक्ष भयंकर चुनौती के रूप में विद्यमान है। धर्म के ठेकेदारों, पाखंडी मुल्ला, मौलवियों, बाबाओं और स्वार्थी राजनीतिज्ञों के हाथों में पड़कर धर्म समाज को जोड़ने के स्थान पर तोड़ने का कार्य कर रहा है। दिनोंदिन बढ़ते जा रहे धार्मिक आतंकवाद प्रतिहिंसा की आग में विश्व को झुलसाते हुए कदाचित तृतीय विश्वयुद्ध का कारण न बन जाए तो कदाचित आश्चर्य नहीं। जहाँ तक औपनिषद् संस्कृति का प्रश्न है 'एकं सद् विप्रा: बहुधा बदंति' का उद्घोष करते हुए औपनिषद् ऋषि एक ही साथ विविध धर्मावलंबी को अपने-अपने धर्मों को मनाने की, धर्माचरण करने की, अपने-अपने प्रभु को अपने-अपने ढंग से रिझाने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। तत्वद्रष्टा मनीषियों ने 'ईसावास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत' तथा 'चिदानंद रूप: शिवोऽहं शिवोऽहं' का साक्षात्कार कर मानव समाज में व्याप्त जाति, धर्म, रूप, रंग, लिंग आदि समस्त भेदों को नकार कर मानव मात्र में शिवत्व और

ईश्वरत्व की परिकल्पना करते हुए समरस एवं सहिष्णु समाज का निर्माण किया।

सर्वानन शिरोग्रीव: सर्वभूतगुहाशय:
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगत: शिव:[11]
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि कुमार त्वं उत व कुमारी
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुख:।[12]

बहुदेववाद की चरम परिणति एकेश्वरवाद में होती है। **'सर्वदेवनमस्कार: केशवं प्रतिगच्छति'** यह आत्मबोध धार्मिक संतो एवं भक्तों की उदात्त रहस्यानुभूति में प्रकट है। प्राय: धर्म के बाह्य स्वरूप-कर्मकांड को लेकर संघर्ष या विद्वेष की स्थिति बनती है। कभी-कभी इसी को लेकर धार्मिक संप्रदायों के मध्य भयंकर रक्तपात भी होता है। वास्तव में यह सब हमारी अज्ञानताजन्य धार्मिक असहिष्णुता के कारण होता है-

"यथा नद्य: स्यन्दमाना: समुद्रे
अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय
तथा विद्वान नामरुपाद्कार विमुक्त:
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।"

विविध नदियों में एक ही प्रकार का जल प्रवाहित होता है परंतु देश, काल, परिस्थिति, भाषा आदि के आधार पर उनके अनेक नाम हैं। गंगा, यमुना, कावेरी, गोदावरी, अमेजन, नील आदि नदियाँ समुद्र में मिलने से पहले पृथक्-पृथक् संज्ञाओं से जानी जाती हैं। जो नदी जिस देश में बहती है उसके प्रति उस देश के निवासियों की श्रद्धा हो जाती है। ठीक उसी प्रकार से विविध भौगोलिक एवं जलवायविक परिस्थितियों में व्यक्ति पैदा हुआ। उसके विश्वास, रीति-रिवाज, वेश-भूषा आदि पर इसका व्यापक असर पड़ा। इन विविध कारकों के कारण मनुष्य की धार्मिक विचारधारा विशेषकर धर्म के बाह्य पक्ष-कर्मकांड में विविधता आना स्वाभाविक थी। जिस प्रकार नदियों के पृथक् नाम रूप को समाप्त करना कठिन एवं अव्यावहारिक है तथैव धार्मिक कर्मकांड की विभिन्नता को भी समाप्त करना दुष्कर एवं अव्यावहारिक है। आवश्यकता है वास्तविक तात्विक दृष्टिकोण अपनाने की। परमतत्व के संबंध में निर्गुण, सगुण, साकार, निराकार, लघु और वृहद् का भेद तत्वत: निरर्थक है

अणोरणीयान् महतो महीया-
नात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्॥[14]

कितनी समन्वयकारी और क्षेमकारी है- विश्वारा औपनिषद् संस्कृति।

एको देवः सार्वभूतेषु गूढ़ः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च॥[15]

तलवार की धार पर धर्मविशेष का प्रचार करने वाले युयुत्सु एवं रक्तपिपासु कट्टरपंथियों को उक्त औपनिषद् उपदेशामृत से ही शांति प्राप्त हो सकती है और विश्व मानवता के योगक्षेम का पथ प्रशस्त हो सकता है।

जनसंख्या विस्फोट भोगवादी संस्कृति के भयावह परिणामों में से एक है। ढेर-सारे प्रतिबंधक साधनों को अपनाने के बावजूद भी जनसंख्या रूपी दानव रक्तबीज की भाँति निरंतर वृद्धिगत होता जा रहा है। कारण स्पष्ट है-हम अपनी मानसिक सोच में बदलाव लाए बिना क्रियाशक्ति पर नियंत्रण स्थापित करना चाहते हैं। सर्वप्रथम हमें जननक्रिया के पीछे छुपे तात्विक एवं आध्यात्मिक रहस्य को समझना होगा। हमें विचार करना होगा हमारा गार्हस्थ जीवन शिशु जनन का कारखाना है अथवा पितृऋण से मुक्त होने का पवित्र माध्यम । श्रेष्ठ संतति जहाँ माता-पिता की उद्धारक होती है वहीं वह राष्ट्र की श्रीवृद्धि का कारक भी होती है। **'वरमेको गुणीपुत्रः न च मूर्ख शतान्यपि'**। संतति जनन यहाँ दैवीक्रिया बतलाई गई है। पिता को अपने वीर्य का और माता को गर्भस्थ भ्रूण का सतत संरक्षण करना चाहिए। ***'सा भावयित्री भावयितव्या भवति'-ऐतरेय उपनिषद्।***

औपनिषद् ऋषि मनुष्य की उद्दाम भोगवासना पर लगाम लगाते हुए, पितृऋण से मुक्त होने की कामना से स्वस्थ संतति और स्वस्थ जीवन हेतु नियंत्रित एवं निश्चित मात्रा तक ही नारी संसर्ग की अनुमति प्रदान करता है। पातंजलि योग प्रदीप में वर्णित है-

ऋतुकाले स्वदारेषु संगतिर्या विधानतः
ब्रह्मचर्य तदोक्तम् गृहस्थाश्रम वासिनाम्॥

प्रश्नोपनिषद् में वर्णित है- रात्रि भोगरूप मयी है। जो मनुष्य दिन में स्त्री प्रसंग करते हैं वे अपने लक्ष्य तक न पहुँचकर इस अमूल्य जीवन को व्यर्थ ही खो देते हैं।[16] इस ऋचा में गृहस्थों को दिन में स्त्री प्रसंग कदापि न करने का और विहित रात्रियों में शास्त्रानुसार नियमित और संयमित रूप में केवल संतानोत्पत्ति की ईच्छा से स्त्री सहवास का निर्देश किया गया है।

यदि हम अपनी संस्कृति के उक्त नैतिक मूल्य को अपने वैयक्तिक और नागरिक जीवन में आत्मार्पित कर लें तो एक तरफ जहाँ जनसंख्या विस्फोट पर प्रभावी अंकुश लगाया जा सकता है। तथा अनेकों शर्मनाक घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकते हुए नागरिक जीवन को नैतिक अधः पतन से बचाया जा सकता है।

औपनिषद् पर्यावरणीय चेतना पर चर्चा किए बिना उक्त आर्ष संस्कृति का अवगाहन अधूरा ही रह जाएगा। पर्यावरण प्रदूषण आधुनिक भोगवाद, जड़वाद और विज्ञान तकनीकी पद्धति की अनिवार्य दुखद परिणति है। जहाँ तक भोगवाद का प्रश्न है आखिर में भोग्य पदार्थों की एक सीमा होती है। उसके उपरांत वे समाप्त हो जाते हैं, जबकि भोग की उद्दाम लालसा अहर्निश प्रबलतर होती जाती है। यदि मनुष्य अपने वर्तमान को ही सुखद बनाने में अपनी सारी प्राकृतिक संपदा का दोहन कर डालेगा तो फिर भविष्य हेतु क्या बचेगा। ऐसी स्थिति में एक न एक दिन स्वअस्तित्व पर खतरा खड़ा हो जाएगा। आखिर डायनासोर की प्रजाति के साथ यही तो हुआ। अंततः एक दिन आया जब भूख और प्यास से तड़पती हुई संपूर्ण प्रजाति का ही विनाश हो गया। निश्चित रूप से हमें विकास के संदर्भ में ऐसे माडल को व्यवहृत करना पड़ेगा जिसमें उपभोग के साथ-साथ संरक्षण का सिद्धांत भी सम्मिलित हो और यह भौतिकवादी सोच पर कदापि संभव नहीं है। जब तक हम प्रकृति के प्रत्येक उपादान में परमसत्ता का साक्षात्कार नहीं करेंगे तब तक पर्यावरण के प्रति आत्मीय लगाव की यह सोच विकसित ही नहीं हो सकती। भगीरथ की तपश्चर्या और महाकाल की जटा से पतितपावनी गंगा के

अवतरण का आध्यात्मिक नजारा जब तक हमारे जेहन में नहीं उतरेगा तब तक 'गंगा एक्शन प्लान' से गंगा की प्रदूषण मुक्ति की कल्पना दिवास्वप्न ही रह जाएगी।

ईसावास्य उपनिषद् का प्रथम श्लोक त्याग युक्त भोग का निर्देश देते हुए पर्यावरणीय संकट से आत्यंतिक मुक्ति का समाधान प्रस्तुत करता है-

"ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत
तेन त्यक्तेन भुंजीथा या गृधः कस्य स्विद्धनम्॥[17]

उपनिषदों का पर्यावरण के लिए महनीय अवदान यह है कि उसमें पर्यावरण के घटकों-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा वनस्पतियों को तत्वमीसांसीय दैवी आधार प्रदान कर उनकी शुचिता को वांछनीय बना दिया गया है। पंचतत्व परमात्मा के अंग हैं। यदि सुखमय जिंदगी जीना है तो इन पंचतत्वों पर आक्रमण नहीं करना है बल्कि इन्हें समादर देना है, इन्हें पवित्र बनाना है। श्वेताश्वतर उपनिषद में अग्नि, जल, पृथ्वी, औषधियों तथा वनस्पतियों तक में परमसत्ता के अधिवास को अंगीकृत करते हुए उनकी पूजा, संरक्षण ओर संवर्धन का निर्देश दिया गया है।-

यो देवो अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
यः ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः।[18]

औपनिषद् काल में जल के प्रदूषण की बात तो दूर रही लोग जल की उपासना किया करते थे-

"सर्वास्वप्सु पंचविधं सामोपासीत"।[19]

कालांतर में **'गंगे तव दर्शनात् मुक्तिः'** और **'त्वदीयं पाद पंकजं देवि नर्मदे'** आदि मंत्रों के माध्यम से जल को परमपावनी श्रद्धा प्रदान की गई। इतना ही नहीं **'ऋतुषु पंचविधं सामोपासीत, पशून न निन्देत् एतद् व्रतम, पशुषु पंचविधं सामोपासीत, ऋतून न निन्देत, आकाशं उपास्स्वेति एतद् व्रतम्'** आदि महामंत्रों के माध्यम से मानव की पर्यावरणीय समझ को दैवी आधार और शुचिता प्रदान की गई।

यदि आज हम उक्त पर्यावरणीय दर्शन को अपने जीवन का अंग बना लें तो यह बंध्या धरती पुनः शस्य श्यामला और प्रभूतप्रसवा हो सकती है। परिणामस्वरूप यह गीत साकार हो सकेगा- **"सुजलां सुफलां मलयज शीतलां, शस्य श्यामलां मातरम्, वंदे मातरम्॥"**

यही वे नैतिक आदर्श थे जिन पर चलकर वैदिक संस्कृति ने विश्व को अनश्वर प्रकाश दिया था। वैदिक संस्कृति के उक्त तत्वों का पालन करके ही आज के अशांत विश्व में शांति की सरिता प्रवाहित की जा सकती है। यही कारण है कि संप्रति भौतिक दृष्टि से नितांत संपन्न राष्ट्र भी आत्मशांति के उद्देश्य से भारतीय चिंतन की ओर श्रद्धावनत हैं। इसी मंतव्य की पुष्टि जेम्स काजिन्स की निम्न उक्तियों में निहित है-**"भारत की आदर्श किंतु अमर संस्कृति जिसने साम्राज्यों का उत्थान-पतन देखा है मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी है। यही कारण है कि आज का यूरोप अपनी घातक सभ्यता से दुखी होकर भारत की ओर देख रहा है।"**[20]

अंत में अशेषस्वस्ति-भावना से संवलित स्वस्थ जिजीविषा के प्रति आस्था के साथ विश्वशांति की कामना में निम्नोक्त आर्ष वाणी इस आलेख का भरत वाक्य है-

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः
स्थिरैरंगैः तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः
स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु
ऊँ शान्तिः! शान्तिः!। शान्तिः॥[21]

❑

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. राधाकृष्णन, भारतीय संस्कृति कुछ विचार. **The present Crisis of Faith** का श्रीरामनाथ सुमन द्वारा हिंदी अनुवाद, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली 1996, पृष्ठ-9
2. कठोपनिषद 1/1/25, अंतर्गत ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर.
3. वही, 1/1/27, " " "
4. वही, 1/2/6, " " "
5. "अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते" ईशावास्योपनिषद् मंत्र सं-9, अंतर्गत ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर
6. '21वीं शताब्दी की चुनौतियाँ और भारतीय दर्शन की प्रासंगिकता' लेख डॉ. जटाशंकर, अखिल भारतीय दर्शन परिषद के हजारीबाग अधिवेशन की संगोष्ठी में पठित एवं समाज, धर्म एवं दर्शन पत्रिका के अप्रैल-सितंबर 2001 अंक में प्रकाशित

7. तैत्तिरीय उपनिषद, 1/11, अंतर्गत ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर.
8. मुंडकोपनिषद, 1/6 " " "
9. तैत्तिरीय उपनिषद, 1/9 " " "
10. तैत्तिरीय उपनिषद, 3/10 " " "
11. श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/11 " " "
12. वही, 4/3 " " "
13. मुंडकोपनिषद्, 3/2/8 " " "
14. श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/20 " " "
15. वही, 6/11 " " "
16. प्रश्नोपनिषद्, 1/13 " " "
17. ईशावास्योपनिषद् प्रथम श्लोक " " "
18. श्वेताश्वतरोनिषद् 2/17, " " "
19. छांदोग्योपनिषद् चतुर्थ खंड प्रथम ऋचा, गीताप्रेस, गोरखपुर.
20. कल्याण, हिंदू संस्कृति अंक, पृष्ठ 205, कल्याण कार्यालय, गोरखपुर.
21. प्रश्नोपनिषद्, शांतिपाठ, अंतगर्त ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर.

रासलीलानुकरण का औचित्य

● डॉ. राखी

[प्रस्तुत लेख में 'रस' शब्द की व्युत्पत्ति से प्रारंभ करके भगवान कृष्ण की माखन-चोरी, रासलीला आदि के मर्म को दर्शन और अध्यात्म के धरातल पर समझाया गया है। लेख में इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि एक बार रास करते हुए जब गोपियों का अभिमान बढ़ गया तो कृष्ण उन्हें सबक सिखाने के लिए कृष्ण तिरोभूत हो गया और विरह में तड़पती गोपियों ने भगवान कृष्ण को पुन: प्राप्त करने के लिए किस प्रकार रासलीला का अनुकरण किया। तब से भक्त-मंडलियाँ रासलीलानुकरण का अनुष्ठान करने लगीं।]

'रास' शब्द रस से बना है। रस का पर्याय 'आनंद' है। श्रुतियों के अनुसार 'रसानां-समूहो-रास:' अर्थात् रस का समूह रास है। लीला का साधारण अर्थ क्रीड़ा या खेल से लिया जाता है। लौकिक धरातल पर 'रास' गायन-वादन युक्त मंडलाकार लास्य-नृत्य है, जिसमें एक नर्तक अनेक नर्तकियों के साथ शृंगार-चेष्टाएँ करता हुआ नृत्य करता है।

गोपियों को आनंद प्रदान करने के लिए भगवान कृष्ण ने जो लीलाएँ रचीं, आज उन्हीं लीलाओं का अनुकरण कर भक्त लोगण आनंदित होते हैं। यह कार्य श्री कृष्ण-रासलीलानुकरण कहा जाता है। ब्रज-भूमि पर ही

● एस-304, निवेदिता कुंज, सैक्टर-10, आर. के. पुरम, नई दिल्ली -110022

नहीं आज देश-विदेश में भी रासलीलानुकरण किया जाता है। श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं का वर्णन विष्णु पुराण, श्रीमदभागवत हरिवंशपुराण आदि पुराणों में विस्तृत रूप से प्राप्त होता है। आज यदि विचार करके देखें तो यह बात अजीब-सी लगती है कि जो ईश्वर इस सृष्टि का पालनहार है वह माखन चुराता है, नव-नवेली दुल्हनों से रूप का दान माँगता है, मटकी फोड़ना, ब्रजनारियों के वस्त्र चुराना और महारास हेतु उन्हें आमंत्रण देना ये सब क्या है? एक रसिया की भांति, एक भंवर की भाँति कली-कली फूल-फूल मंडराना ये सब क्यों? कभी ईश्वर भी भला ऐसा करता है। ऐसी कौन-सी मोहिनी डाली श्यामसुंदर ने जो ब्रजवासी आज भी लालायित हो उसका नाम स्मरण, भजन, जप एवं लीलानुकरण करते दिखाई देते हैं।

श्यामसुंदर ने जो ऐश्वर्य प्रधान (पूतनावध, कंसवध, तृणावर्तवध आदि) लीलाएँ कीं, वह बालस्वरूप में संपन्न कीं और जो माधुर्य प्रधान लीलाएँ कीं, वह सब किशोरावस्था की हैं। उनका अपने से उम्र में बड़ी ब्रजनारियों को परेशान करने का क्या मतलब था इसका एक आध्यत्मिक पहलू भी है जो तर्क-वितर्क विषय से परे है। बालक कृष्ण जो साक्षात सच्चिदानंद परमेश्वर हैं, वे ब्रजगोपियों के हृदय भाव जानते थे। मन ही मन वे सब चाहती थीं कि श्यामसुंदर उनका माखन खा जाएँ। लेकिन ऊपर से क्रोध दिखाते हुए कहती हैं ..... "मैं क्या कहूं? कह भी नहीं सकती, ऐसा समय कभी नहीं देखा कि भलाई करने पर बुराई मिले। तेरे इस छींके पर एक बिल्ली चढ़ गई थी उसने तेरे माखन की मटकी भूमि पर गिरा दी थी। मैं तो यहाँ बैठकर अदभुत शोभा निहार कर बलिहारी हो गई। तब श्यामजी तपाक से बोले .... "अरी सखी, घबरावै क्यों है, अभी तो कई बेर बलिहार होगी"। श्याम सुंदर की यह लीला बृजगोपियों को अत्यंत आनंद देती थी इसीलिए भक्तगण आज भी कृष्णप्रिय माखन को सर्वप्रथम उन्हें अर्पण करते हैं।

प्रश्न अब वही है, वे चोरी क्यों करते थे? पुराणों में ऐसी मान्यता है कि कृष्ण, भगवान का प्रतीक है, माखन काम का प्रतीक और गोपियाँ, भक्तों का प्रतीक। अपने भक्तों को कामरूपी अंधकार से बचाने के लिए कृष्ण घर-घर जाकर कामरूपी माखन खा जाया करते थे। यदि हम

आध्यत्मिक पहलू में झाँक कर देखें तो कृष्ण लीला का प्रत्येक पक्ष महान संदेहमय प्रतीत होता है। परंतु यहाँ हम लीलानुकरण के औचित्य की चर्चा कर रहे हैं--एकबार कृष्ण जब ब्रज नारियों के साथ रास कर रहे थे तब कृष्ण का स्पर्श एवं आलिंगन सुख प्राप्त कर ब्रजगोपियों को अभिमान हो गया। उनके मन के भाव जानकर श्यामसुंदर राधारानी के साथ अंतर्धान हो गए।

यथा- गरब भयौ व्रजनारि को तबहिं लई हरि जाना।
राधा प्यारी संग लिए, है गये अंतर्ध्याना।।

श्रीकृष्ण को अपने समीप न पाकर गोपियाँ विलाप करने लगीं, अपने प्राणाधार को पुन: प्राप्त करने के लिए यत्न करने लगीं। चूँकि कृष्ण जी रासलीला के मध्य अंतर्धान हुए थे इसलिए उनका प्राक्ट्य भी वहीं होगा, ऐसा विचार कर ब्रजगोपियों ने जन्मलीला से लेकर रासलीला पर्यंत उनकी लीलाओं का अनुकरण प्रारंभ किया। वृंदावन-बिहारी गोपियों के प्रेमाग्रह को ठुकरा न सके तुरंत उनकी विरह-वेदना के उपशमनार्थ प्रकट हो गए। रसलीला की अनुकरण परंपरा भी वही से चली आ रही है। बृजगोपियों का प्रेम इतना प्रबल, गहन एवं पवित्र था कि उनका स्मरण वृजचंद को व्याकुल कर देता था, इसी गोपी-प्रेम के समक्ष परम ज्ञानी उद्धवजी अपना समस्त ज्ञान भुला बैठे, स्वयं बिना प्रेम किए ही प्रेमाकुल हो भटकने लगे। भक्तजनों का ऐसा प्रबल विश्वास है कि रासलीलानुकरण करते समय जिन्हें कृष्णस्वरूप तैयार किया जाता है लीलानुकरण के समय उनके अंदर स्वयं भगवत आवेश आ जाता है। श्री निंबार्क-संप्रदाय के स्वामी घमंडदेवजी जो कि करहला ग्राम- (बरसाने से दो कोस पूर्व दिशा में) में विराजमान हो भक्ति-साधना करते थे, एक दिन उन्हें श्रीयुगलसरकार ने साक्षात दर्शन के साथ अपना मुकुट-लकुट वंशी-चंद्रिका देकर आदेश दिया ..." बाबा। यह मेरा शृंगार लो और बृजवाणी बालकों को मुकुट चंद्रिका धारण कराकर मेरी रासलीलानुकरण का प्रचार-प्रसार करो। आप जिसके मस्तक पर इनको धारण कराओगे, उसमें मेरा आवेश हो जाएगा।"

रासलीला का प्रथम मंथन वंशीवट पर संपन्न हुआ।

कृष्ण अनुयायियों के रास प्रदर्शन में भी कुछ सांप्रदायिक भेद

दिखाई पड़ता है। जैसे बल्लभ संप्रदाय के अनुयायी माखन चोरी, कंसलीला, धाऊलीला आदि का। प्रदर्शन करते हैं। राधा बल्लभ संप्रदाय में श्रीराधा-कृष्ण-सगाई, द्विरागमन आदि का निंबार्क संप्रदायी संयोग-लीलाओं का दर्शन करना तथा चैतन्य-मतानुयायी वियोगलीला देखना पसंद करते हैं। लीला-संबंधी यह सांप्रदायिक-भेद श्रीकृष्ण लीलाओं के विस्तार में विशेष सहायक सिद्ध हुआ है। आज रासमंडलियाँ देश-विदेश में लीलानुकरण के माध्यम से भक्ति का प्रचार-प्रसार कर रही है और भक्तों में आनंदामृत का संचार कर रही हैं। यही लीलानुकरण का प्रमुख लक्ष्य एवं उसकी सार्थकता है।

❑

अमेरिका में हिंदू विवाह पद्धति

● संतोष अग्रवाल

[भारतीय जनता धर्मप्राण होती है। भारतीय लोग विश्व के चाहे किसी भी कोने में जाकर बसें, अपने धर्म एवं संस्कारों की थाती को सुरक्षित रखते हैं भले ही स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार उनमें इधर-उधर थोड़ा-सा परिवर्तन करना पड़ो। इसी प्रसंग में यहाँ अमेरिका में हिंदू विवाह पद्धति का विस्तृत एवं रोचक वर्णन दिया गया है। हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि अपने संस्कारों के अनुष्ठान में कहीं भी च्युति नहीं बरती जाती, बल्कि कुछ पाश्चात्य घटकों के संयोजन से उनकी गरिमा बढ़ सकती है।]

अभी कुछ समय पूर्व ही मुझे अमेरिका की यात्रा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अमेरिका की यात्रा करना आज इतना कठिन नहीं रह गया है जितना कि आज से 30 वर्ष पहले हुआ करता था। जेट-हवाई जहाज के आ जाने से केवल 18-20 घंटे में अमेरिका पहुँच जाते हैं। इस जहाज के रास्ते में केवल एक बार एक-दो घंटे के लिए रुकने की आवश्यकता होती है।

अमेरिका की सारी आबादी अप्रवासियों की है। यहाँ अफ्रीकी, इटालियन, चीनी, जापानी, एशियाई बड़ी संख्या में हैं। अप्रवासी न्यूयार्क

● ए-77, स्मृति, मधुबन, दिल्ली - 110092

के पास एलिस आइलैंड में उतरते थे और वहीं से ग्रीन कार्ड बनाकर अन्यत्र स्थानों पर भेजा जाता था।

अमेरिका में भारतीयों की संख्या धीरे-धीरे बढ़कर अकेले न्यूयार्क में ही लगभग डेढ़ लाख तक पहुँच गई है। अमेरिका में कुल 50 राज्य हैं। पूर्व के 21 राज्यों में भारतीयों की संख्या न्यूयार्क को छोड़कर लगभग 29 लाख है। भारतीयों के अप्रवासी होने के कारण वह अपने साथ खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज और संस्कृति भी ले गए। भारतीयों ने वहाँ के वातावरण के अनुसार रहने में अपने आपको कुछ परिवर्तित भी किया। वेश-भूषा, खान-पान और रहन-सहन में भी परिवर्तन आया। फिर भी अपनी संस्कृति और रीति-रिवाज को बनाए रखने में वे सहर्ष प्रयत्नरत हैं।

मुझे पता चला है कि आज से लगभग 30 वर्ष पहले तक न वहाँ कोई मंदिर था न कोई पंडित उपलब्ध होता था और न ही कोई भारतीय परिधान शादी के प्रयोजनार्थ मिल पाता था। किंतु अब स्थिति यह है कि मंदिर भी पर्याप्त संख्या में बन गए हैं। अकेले फ्लशिंग में ही तीन मंदिर हैं। इसका कारण है कि सबसे पहले जो भारतीय अमेरिका पहुँचते हैं वह फ्लशिंग में ही अपना निवास ढूँढ़ते हैं। एक तो वहाँ पर मेन स्ट्रीट है जो कि बहुत अच्छा मार्किट है तथा न्यूयार्क शहर में जाने के लिए यहाँ से सब-वे की ट्रेन व बस आदि आसानी से मिल जाती है।

हिंदू विवाह जो मुझे देखने को मिला वह डॉ. दास की लड़की प्रिय रुचिरा एवं श्री मदान के लड़के श्री राजेश का था। अर्थात् अंतर्जातीय विवाह, एक पंजाबी परिवार और एक बंगाली परिवार जिनके रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि अमेरिका में क्या भारत में भी बिल्कुल भिन्न हैं।

विवाह का तरीका भी भारतीय एवं अमेरिकी दोनों पद्धतियों का मिलन था। भारत में विवाह जैसे शुभ अवसरों पर मांगलिक गीत गाने की परंपरा है। यह गीत विवाह से एक दो दिन पहले विभिन्न अवसरों पर यथा भात लेना, बाण चढ़ाना, घुड़चढ़ी, बारात के अवसर आदि पर महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं। भारत में आज से लगभग 30-35 वर्ष पूर्व एक-एक हफ्ता पूर्व ही रात के समय गायन प्रारंभ हो जाता था। अमेरिका में विवाह के समय फिल्मी गानों के रिकार्ड लगाकर इसकी पूर्ति की

जाती है। किंतु विवाह से पूर्व कन्या के लिए मेंहदी की रस्म की जाती है। इस अवसर पर महिलाएँ एकत्रित होती हैं। कुछ मंगल-गीत गाती हैं, कन्या के मेहंदी लगाई जाती है, खाने-पीने की व्यवस्था होती है।

इसी प्रकार दूल्हे के यहाँ शादी में तिलक समारोह के अवसर पर कुछ मंगल-गान होते हैं, तिलक चढ़ाया जाता है और जलपान आदि की व्यवस्था की जाती है। बारातियों को बर्तन आदि उपहार स्वरूप दिए जाते हैं। साथ में मिठाई दी जाती है।

लड़का शादी से पूर्व अपने मित्र वर्ग में एक पार्टी करता है जिसे "बैचलर पार्टी" की संज्ञा दी गई है यह उसके "कुँवारेपन का आखिरी दिन" की पार्टी होती है।

विवाह के लिए प्रवेश-द्वार के पास ही एक मेज पर एक सजा -सजाया बक्सा रखा होता है जिसमें आने वाले अपने गिफ्ट का लिफाफा डाल देते हैं। उपहार भी वहीं रख दिए जाते हैं। इसके साथ एक विवाह संबंधी कार्यक्रम भी जैसे कि पहले गोल-गोल लपेट कर निमंत्रण-पत्र भेजे जाते थे उसी रूप में सुंदर ढंग से लाल रंग के धागे से बांधकर रखा जाता है। डॉ. दास की लड़की के विवाह में कार्यक्रम कुछ इस प्रकार हुआ।

बारात स्वागत : विवाह-स्थल के द्वार पर बंदनवार लगाकर सजावट की जाती है। चौकी बिछाई जाती है। बारात बिल्कुल भारतीय तरीके से दूल्हे को घोड़ी पर बिठाकर ढोल बजाते हुए नाचते-गाते ले आती है। दुल्हन की माँ दूल्हे का द्वार पर टीका करती है, आरती उतारती है, न्यौछावर करती है व मिठाई से मुँह, मीठा करती है। लड़के को सीधे ही मंडप में ले जाते हैं जहाँ कि भांवरे पढ़े जाते हैं। मंडप की रूप-सज्जा एकदम भारतीय ढंग से की जाती है। दूल्हा-दुल्हन के लिए नीची कुर्सियाँ तथा दुल्हन के माँ-बाप के लिए चौकियाँ बिछा दी जाती हैं। सामने की ओर दूल्हे के माँ-बाप बैठते हैं।

एक विशेष बात यह है कि मंडप के सामने ही कुर्सियाँ दो भागों में बिछा दी जाती हैं। जिन पर सभी अतिथिगण बैठते हैं। विवाह से पूर्व खाने-पीने आदि की कोई व्यवस्था नहीं होती।

जयमाला : मंडप के सामने से ही लड़की अपने पिताश्री के हाथ में हाथ डाले आती है। रास्ते में छोटी-छोटी कन्याएँ सजी-धजी खड़ी होती हैं, जो फूल बिखरेती हैं। लड़की की वेशभूषा भारतीय लहँगा व

चुनरी है। किंतु चुनरी ओढ़ने का ढंग पाश्चात्य अर्थात् सिर के उपर कलगी नुमा बनाया हुआ तथा पीछे लंबी-सी चुन्नी लटकते हुए।

लड़की के आने पर जयमाला पहले लड़की डालती है फिर लड़का। जयमाला मोती की बनी एक विशेष प्रकार की होती है। इसके बाद वर-वधू मंडप में कुर्सियों पर बैठ जाते हैं।

अब पंडित जी भांवरों का कार्य प्रारंभ करते हैं। वे हिंदी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं के अच्छे ज्ञाता होते हैं। अंग्रेजी चूँकि वहाँ की बोल चाल की भाषा है अत: वे अंग्रेजी में विवाह का उद्देश्य व वैदिक रीति से इसकी मान्यता समझाते हैं। साथ ही साथ वे आदर्श दांपत्य जीवन के लिए अनुकरणीय बातों का, वर्णन करते हैं। दूसरे अर्थों में वह सात वचनों का सार रूप ही होता है। भारत में सात वचन विशेष रूप से लड़के व लड़की से अलग-अलग पढ़ाए जाते हैं।

कन्यादान : अब होता है कन्यादान का कार्यक्रम। वधू के माता-पिता कन्या का हाथ वर के हाथ में सौंपते हैं। यह इस बात का प्रतीक है कि माँ-बाप इस विवाह से सहमत हैं।

हस्त-मिलाप : कन्या व वर दोनों अपने हाथ बढ़ाते हैं। कन्या अपना दाहिना हाथ वर के हाथ में इस प्रकार रखती है कि हथेली ऊपर की ओर रहे। फिर दूल्हा अपना हाथ कन्या के हाथ में इस प्रकार रखता है कि हथेली नीचे की ओर रहे और दोनों इकट्ठे मुट्ठी बंद करते हैं। फिर अंगूठी का आदान-प्रदान होता है।

पाणिग्रहण : पंडित इस समय दोनों के पति-पत्नी बन जाने की घोषणा करता है। वर-वधू भी अग्नि व अतिथियों के सामने उन्हें साक्षी मानते हुए पति-पत्नी की स्वीकृति की घोषणा करते हैं।

वास्तव में यह पाश्चात्य विधि की भाँति है। जैसे कि पाश्चात्य विवाह में वर पादरी के सामने घोषणा करता है कि मैं अमुक कन्या को पत्नी के रूप में स्वीकार करता हूँ।

भांवरे : बहु का बहनोई एक अलग बड़े से रूमाल से वर-वधू का गठबंधन करता है और वर-वधू अग्नि के चारों ओर सात बार फेरे लगाकर भांवरे लेते हैं।

अग्नि एक हवन कुंड में जलाई जाती है। सात भांवरों के समय वधू का भाई वर-वधू के हाथ में खीलें देता है और वह दोनों उसे यज्ञ की भेंट करते हैं जो कि अपनी विवाह की सफलता के लिए एक याचना है।

शिला-रहिन : वर-वधू एक पत्थर पर अपना पाँव रखते हैं जो इस बात का प्रतीक है कि वह हमेशा स्थिर व एक मत होकर रहेंगे।

सिंदूर : विवाह के प्रतीक स्वरूप वर लड़की की माँग में सिंदूर भरता है।

सप्तपदी : वर-वधू प्रतीकात्मक सात कदम धरते हैं जोकि उनकी इस प्रतिज्ञा के सूचक हैं कि आज से उनका एक नया जीवन प्रारंभ हो रहा है और वह मिलकर अपने स्वप्न और अपनी अभिलाषाएँ पूर्ण करेंगे।

हृदय स्पर्श : वर-वधू एक दूसरे का दोनों हृदय व सिर स्पर्श करते हैं जो कि इस बात का सूचक है कि दोनों के हृदय व मस्तिष्क एक दूसरे के पूरक हैं।

यह प्रथा हिंदुस्तान में नहीं होती। यह भी पाश्चात्य प्रथा है।

आशीर्वाद : वधू पक्ष की ओर से सभी आगंतुकों को फूल वितरित किए जाते हैं और सभी फूलों की बौछार करके वर-वधू को आशीर्वाद देते हैं।

इसके बाद जलपान की व्यवस्था होती है। उसमें शराब से लेकर साफ्ट ड्रिंक व जूस पीने के लिए तथा चाट, समोसे, पकौड़े आदि होते हैं। अतिथिगण आपस में बातचीत भी करते हैं और खाने का भी आनंद लेते हैं। जलपान की व्यवस्था अलग स्थान पर होती है और शादी की अलग हाल में। बैरे जब खाद्य पदार्थ लाते हैं, लोग अपनी प्लेट में वंछित चीजें ले लेते हैं। बैरे का कार्य महिलाएँ भी करती हैं।

जलपान के बाद एक अलग कमरे में सभी आगंतुकों के बैठने की व्यवस्था एक ओर होती है तथा बीच में नृत्य की जगह होती है। यह पाश्चात्य तरीका है।

एक बात और यह है कि अमेरिका में किसी भी अवसर पर पार्टी की व्यवस्था किए जाने पर प्रति परिवार एक उपहार दिया जाता है।

उपहार एक मेज पर रख दिए जाते हैं और उसके साथ ही प्रत्येक परिवार के बैठने के लिए मेज के नंबर पर अतिथि के नाम लिखी पर्चियाँ भी रखी होती हैं। निमंत्रण पत्र भेजते समय एक पर्ची व छोटा लिफाफा और भेजा जाता है जिसपर अपने परिवार के सदस्यों की संख्या व नाम लिखकर निमंत्रण देने वाले को भेज दी जाती है जो कि पार्टी में शामिल होने की पुष्टि होती है।

सभी अतिथिगण अपने-अपने नंबर की मेज पर जाकर बैठते हैं। वहाँ साफ्ट ड्रिंक आती है। एक ओर बार की भी व्यवस्था होती है। दूसरी ओर खाने की व्यवस्था होती है। इसी बीच दूल्हा-दुल्हन अपने कपड़े बदलकर पार्टी के लिए तैयार होकर आते हैं। उस समय वह पाश्चात्य वेश-भूषा में होते हैं। एक ओर डी-जे होता है। डी-जे का संचालक ही पति-पत्नी को आमंत्रित करता है तथा केक कटवाता है। केक काटकर वे एक दूसरे को खिलाते हैं तथा एक-दूसरे का चुंबन करते हैं। पाश्चात्य तरीके में यह उनके पति-पत्नी बन जाने की मोहर है। सर्वप्रथम यह दोनों नृत्य करते हैं। फिर वर-वधू के माता-पिता को आमंत्रित करते है। वह भी नृत्य करते हैं तथा अन्य सभी भी नृत्य करते हैं। डी-जे पर गाने चलते रहते हैं।

दूसरी ओर खाना प्रारंभ हो जाता है। खाना लेकर लोग अपनी-अपनी जगह पर बैठ जाते हैं। खाते भी जाते हैं और नृत्य भी देखते हैं और नृत्य भी करते हैं। खाने में व्यंजनों की भरमार इतनी नहीं होती जितनी की भारत में। वहाँ पर तो दो-तीन सब्जी, छोले-नान, चाट-पकौड़ी तक ही सीमित होती है।

इन सब कामों में ग्यारह बारह बज जाते हैं और सभी अपने-अपने घर वापस पहुँचते हैं। कभी-कभी परिवार ऐसा भी करते हैं कि यदि शादी भारत में कर देते हैं तो वहाँ अमेरिका में एक पार्टी का आयोजन करते हैं। अमेरिका में पार्टी स्थल पर प्रवेश द्वार के पास एक कमरे में कोट रखने की भी व्यवस्था होती है। चूंकि वहाँ पर सर्दी/बर्फ बहुत पड़ती है अत: सभी कोट/शाल पहनकर आते हैं और वहाँ पर कोट/शाल आदि जमा कर देते हैं। हाल और कमरों में हीटर चलता रहता है। इसलिए कोट

पहनने की आवश्यकता नहीं होती। भारत में यह वजन खुद ही उठाना पड़ता है। दूसरे शादियाँ भी खुले स्थानों पर होती है।

शादी के बाद दूल्हा-दुल्हन कार से सामान्यतया हनीमून के लिए निकल जाते हैं। कार पर आगे व पीछे दोनों ओर 'जस्ट मैरिड' लिखकर एक-एक पैम्फलेट चिपका दिया जाता है।

सार रूप में कहा जा सकता है कि अमेरिका में भारतीयों ने आज भी अपनी संस्कृति को जीवित रखा हुआ है। यह हमारे सांस्कृतिक मूल्य ही हैं जो पुरातन होते हुए भी नवीन हैं और शाश्वत चले आ रहे हैं। अपनी विशेषताओं के कारण ही भारतीय संस्कृति विश्व में निराली है और दुनिया के कोने-कोने में आदर के साथ देखी जाती है।

❑

महाराष्ट्र का मेलघाट और कोरकू समाजः एक अनुशीलन

●श्री विशाल गजभिये

महाराष्ट्र प्रांत का यदि विभाजन किया जाए तो उसका मुख्यतः दो भागों में विभाजन हो सकता है, एक पश्चिम महाराष्ट्र और दूसरा विदर्भ। भौगोलिक दृष्टि से 'विदर्भ' भारत का मध्यवर्ती प्रदेश माना जाता है। जिस प्रकार अँगूठी में चमकता हीरा अत्यंत प्रभावशाली और तेजस्वी दिखाई देता है, उसी प्रकार भारत के मध्य विदर्भ का महत्व है। विदर्भ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखा जाए तो विदर्भ में महाभारतकालीन 'भोजराजा' के राज्य का अस्तित्व मिलता है, अज्ञातवास के दिनों में पांडव भी इसी क्षेत्र में आए थे, भगवान श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणी भी विदर्भ की ही कन्या थी। विदर्भ को संतों की भूमि भी कहा जाता है, जिसमें संत गुलाबराव महाराज, संत गाडगेबाबा, संत तुकडोजी महाराज आदि का समावेश होता है। ऐसे संपन्न विदर्भ के अंतर्गत अमरावती जिले में ही सतपुड़ा पहाड़ी स्थित है।

इन सतपुड़ा शृंखलाओं को ही 'मेलघाट' नाम से संबोधित किया जाता है। मेलघाट का शाब्दिक अर्थ दो नदियों के मेल से निर्मित टापू या घाट होता है अर्थात 'मेलघाट' होता है। दो नदियों से निर्मित त्रिभुज प्रदेश ने घाट का स्वरूप लिया और वहाँ जिस ग्राम का निर्माण हुआ उसका नाम 'मेलघाट' हुआ। मेलघाट मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र की सीमा रेखा पर

● नाइक झेरोक्स के पास, रुक्मिणी नगर, अमरावती (महाराष्ट्र)

स्थित है, जो महाराष्ट्र का ही अविभाज्य अंग है। मेलघाट में कई जनजातियों के साथ-साथ भिन्न प्रदेशों से आए लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक परिदृश्य में इंद्रधनुषी छटा का आभास होता है। एक ओर जहाँ भाषाओं में यहाँ विभिन्नता है, वहीं दूसरी ओर सांप्रदायिक सद्भाव, आत्मीयता और विविधता में एकता भी दिखाई पड़ती है।

मेलघाट में कुल छह प्रकार की आदिवासी जनजातियों का समावेश होता है। जिसमें कोरकू, गोंड, निहाल, मोंगीया, बलई, बंजारी नामक जनजातियों का समावेश होता है। इनमें से मुख्यतः कोरकू जमात कही जा सकती है। कोरकू विशेष रूप से हरसूद (मध्यप्रदेश) तहसील के ग्रामों में दूर-दूर तक बसे हैं। विंध्य और सतपुड़ा की पर्वत मालाओं में ये चार समूह में पाए जाते हैं-

(1) रुमा, (2) पोतड़या, (3) दुलारया, और (4) बोबई

इनमें 'रुमा' कोरकू मेलघाट में अधिक मात्रा में मिलते हैं। अतः इन आदिवासी जनजातियों की अपनी-अपनी सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि परस्पर भिन्न-भिन्न प्रकार है। आदिवासी जनजाति सतपुड़ा पर्वत के गहन जंगलों में नदी, नालों के कल-कल करते झरनों में आनंद लेते हुए रहनेवाली तथा वन के फूल, फल, पत्तों और वृक्षों से प्राप्त वस्तुओं को ग्रहण कर अपना जीवन व्यापन करनेवाली जनजाति है जिसका अपना अलग ही इतिहास है। आदिवासी लोग जो आधुनिकता से दूर थे एवं शहरों की चहल-पहल से भी परे थे, आज वही आदिवासी समाज आधुनिकता को अपनाकर शहरी समुदाय से कंधे से कंधा मिलाकर चल रहा है। मेलघाट के कोरकू तथा आदिवासियों का उद्भव और विकासात्मक स्वरूप चूँकि अनेक मतमतांतरों के बीच उलझा हुआ है इसलिए इनके सांस्कृतिक परिवेश और सभ्यता के प्रति किसी के मन में जिज्ञासा होना अत्यंत स्वाभाविक है। इनकी विशिष्टताओं और प्रवृत्तियों को प्रकाश में लाने का और आधुनिक समाज से जोड़ने का आज हर संभव प्रयास किया जा रहा है।

मेलघाट क्षेत्र को अगर देखा जाए तो यह सात पर्वत शृंखलाओं से घिरा जंगलों का ही क्षेत्र है। मेलघाट संपूर्ण भारत में शेर और भालू के लिए अत्यंत ही प्रसिद्ध क्षेत्र माना जाता है।

"प्रशासकीय दृष्टि से मेलघाट का क्षेत्रफल 1.546 मील है। इसमें से ग्रामीण भाग का क्षेत्रफल 1.544 चौरस मील है और शहरी भाग केवल 2 चौरस मील है। मेलघाट में वनभूमि का क्षेत्रफल 3059.93 वर्ग कि.मी. है। मेलघाट धारणी और चिखलदरा इन केवल दो तहसील को मिलाकर ही बना है जिसमें 279 गाँव तथा केवल एक शहर आता है।

कुल 1,07760 जनसंख्या में से आदिवासियों की जनसंख्या 79371 है। विदर्भ का स्वर्ग कहे जानेवाले मेलघाट का वन प्रदेश सतपुड़ा पर्वत श्रेणी की गोद में बसा हुआ है। इन पर्वतों की ऊँचाई लगभग 3400 फुट है। चिखलदरा से दो मील की दूरी पर वैराट पर्वत की ऊँचाई 3600 फुट की है। धारणी तहसील की पूर्व दिशा में चिखलदरा तहसील है और पश्चिम में बुरहानपुर तहसील, जिला खंडवा, मध्यप्रदेश की सीमावर्ती है। मध्यप्रदेश की सीमा धारणी से केवल 10 मील की दूरी पर स्थित है।"[1]

कोरकू आदिवासियों का क्षेत्र संपूर्ण मेलघाट और मेलघाट से लगकर बुलढ़ाणा जिले का कुछ भाग, आकोट तहसील का उत्तरी हिस्सा इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश का बुरहानपुर, मालवा, होशंगाबाद, भैंसदेही, बैतूल, खंडवा इन तहसीलों में भी कोरकू जनजाति पाई जाती है।

"महाराष्ट्र राज्य में आदिवासियों के निवास को भौगोलिक दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:

(1) सहयाद्री विभाग, (2) सतपुड़ा विभाग, और (3) गोंडवना विभाग।

गोंडवना विभाग में विशेष रूप से अमरावती जिले के मेलघाट विभाग में और चंद्रपुर जिले के गडचिरोली, सिरोंचा भाग में माड़िया गोंड, कोरकू जनजातियों का निवास है।"[2]

सभी जातियों के पूर्वज कभी न कभी विभिन्न प्रदेशों से कभी भूतकाल में यहाँ आए थे। कोरकू जनजाति अपने समुदाय को भी अति प्राचीन बताती है। साथ ही उसके लिए कौरव-कोरी कोरकू अर्थात कौरव की बची हुई सेना की एक टुकड़ी की ही संतान कोरकू लोग स्वयं को मानते हैं। अर्थात अपने आपको आर्य परंपरा से वे जोड़ते हैं।[3]

"लगभग 30,000 कोरकू बरार से लगे प्रांत में सतपुड़ा पर्वत में निवास करते हैं। कुछेक हजार कोरकू भोपाल के आसपास पाए गए थे।

'कोरो' (कोरकू) इस शब्द का साधारण अर्थ 'मनुष्य' होता है। इसमें 'कु' लगाने से मनुष्य समुदाय अर्थ निकलता है।"[4]

"1951 और 1961 की जनगणना के अनुसार कोरकू बोली बोलने वालों की जनसंख्या अमरावती जिले में जनसंख्या की तुलना में 50,007 है।"[5]

इस 1425 बहामनी वंश के राजा अहमदशाह अली ने सतपुड़ा की घाटियों में 'गाविलगड़' नामक किला बनाया था जिस पर निजाम, मोंगल, भोसले आदि ने अपना अधिपत्य कर लिया था। अंत में 1803 में अंग्रेजों ने अपना झंडा उस पर फहराया। इसके पश्चात ही अंग्रेजों ने जंगल कटाई के लिए कोरकू लोगों को यहाँ बसाया, जिसमें हैद्राबाद पलटन के कप्तान राबिन्सन ने इ.स. 1823 में शीत वातावरण के प्रदेश, चिखलदरा तहसील की खोज की। कोरकू और अन्य आदिवासी जनजाति को सभ्य लोगों से सबसे प्रमुख अंतर यह लगा कि, मानव आकृति होते हुए भी ये उनसे कई बातों में पूर्णत: भिन्न थे। रहन-सहन, खान-पान एवं अन्य पारिवारिक दृष्टि से वे स्वयं को इनके भिन्न मानते थे। यह सब देख यहाँ की जनजातियों ने अपने आप में दुर्बलता का अनुभव किया और भविष्य में अपनी प्रजाति के नष्ट होने के भय से स्वयं में परिवर्तन लाना उचित समझा। जैसे-जैसे अंग्रेजों का वर्चस्व बढ़ता गया वैसे-वैसे ही ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार भी होने लगा। ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म प्रचार के लिए 'मेलघाट' क्षेत्र को ही चुना। यहाँ रहनेवाले को ईसाई धर्म में परिवर्तित करके उन्हें जीवन की नई दिशा प्रदान की। मिशनरियों ने मेलघाट के छोटे-छोटे गाँव में जाकर इन जनजातियों के लोगों की जरूरतों को पूरा करके उन्हें अपने धर्म में शामिल कर लिया। आज भी मिशनरियों की 'वर्ल्ड विज़न' नामक ईसाई संस्था यहाँ कार्यरत है।

"कोरकू लोगों की अपनी अलग संस्कृति है जिसे बचाए रखने की कोशिश ये लोग कर रहे हैं। कोरकू जनजाति के आदिम जीवन के अवशेष अभी भी उनके बीच विद्यमान हैं। रीति-रिवाजों और रहन-सहन में ये स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। मृत व्यक्ति को जमीन में गाड़ने की प्रथा इनमें विद्यमान है। अपने खेत में या अपनी प्रिय वस्तु के पास प्राय: मृत व्यक्ति को ही गाड़ा जाता है। श्मशान भूमि में जनसाधारण को गाड़ने की

प्रथा है। यदि घर का बुजुर्ग व्यक्ति मर जाता है तो एक दो साल के बाद अच्छी फसल आने पर उसकी 'फूलजागनी' अर्थात मृत संस्कार करते हैं। 'फूल जागनी' खुले दिनों में किया जाता है। इसमें भी शादी के समान ही खर्च आता है। शादी के समान ही अपने कुटुंबियों और अड़ोस-पड़ोसवालों को आमंत्रित किया जाता है। जो देवपूजा करनेवाले 'भगत' होते हैं उनके 'मुंडो' बनाए जाते हैं। ये मुंडो पत्थर या लकड़ी के होते हैं। इन्हें देवता के समान मंदिर बनाकर रखा जाता है और उस परिवार के सदस्य तथा उसे माननेवाले उसके शिष्य उस 'मुंडो' की पूजा प्रत्येक वर्ष दशहरे की अमावस्या को और वैशाख की अमावस्या को करते हैं। ढोल बाँसुरी बजाकर, नाचना-कूदना, गाना और युवकों का समुदाय अश्लील वचन बोलते हुए कूदना आदि इस 'फूलजागनी' में होता है। परंपरागत रीति-रिवाज से 'फूल' जगाना अर्थात् फूलजागनी करना और मृत व्यक्ति की आत्मा को शांति प्रदान करना इसका उद्देश्य होता है।"[6]

इन लोगों का जादू-टोना पर भी अधिक विश्वास देखने को मिलता है। जादू-टोना करने वाले ओझा को कोरकू भाषा में 'भुम्का' कहा जाता है। इनके देव मूल रूप में सीमित हैं और सीधे रावण, मेघनाथ और कुंभकरण के प्रति इनका झुकाव है। दशहरा हिंदुओं का महत्वपूर्ण पर्व माना जाता है। इसी दिन भगवान राम ने रावण को परास्त किया था। जिस रूप में हिंदू दशहरा मनाते हैं उस रूप से यह जनजाति दशहरा नहीं मनाती। भैंसे की नाक काटते हुए और उसके अंग क्षत-विक्षत करते हुए अपने पूरे ग्राम में घुमाती है ताकि उसका ताजा रक्त संपूर्ण गाँव में गिरे और उनके देवताओं की संतुष्टि हो। भैसों के माँस को ये बड़े प्रेम से खाते हैं। रात्रि में अपने इष्टदेव (मुठवा देव) के पास आग जलाकर रातभर नाचते-कूदते जागरण करते हैं और प्रातःकाल से दशहरा मनाते है। जागरण का कारण यह हो सकता है कि ये सोए हुए कुंभकरण को जगाने का प्रयास करते हैं और दूसरे दिन सोने की लंका की प्रतिष्ठा कर उसकी रक्षा करने का प्रयास करने के जैसा उपक्रम करते हैं। रावण की विजय और राम की पराजय हो ऐसी भावना इस उपक्रम में दिखाई देती है। इसी तरह होली के प्रमुख त्योहार में 'मेघनाथ' और 'रावण' आदि का पूजन भी करते हैं। कोरकू लोग पर्यावरण के प्रति भी निष्ठा रखते हैं। बड़ के

वृक्ष की ये लोग देवता समान पूजा करते हैं। यहाँ तक की इनके गोत्रों के नाम भी वृक्ष और पर्यावरण पर आधारित हैं जैसे-

जांबु- जामुन का वृक्ष कसडा कसा-मिट्टी
झारा- घास टोटा-ज्वार व मकाई के सूखे डंठल
बेथे (चोसो) भिलावा वृक्ष कोत्या-कोयला
मावसी (57) पानी मुरिराना-एक जाति का वृक्ष

कोरकू लोग पहाड़ी पर ही खेती करते हैं। यहाँ मक्का साक्या, कोदो, जगणी सोयाबीन, धान, चना, कुटकी, गढमल, ज्वार, फल्ली की खेती होती है तथा पशुपालन बकरी और मुर्गी पालन भी करते हैं।

कोरकू जनजातियों में 'कोरकू' भाषा ही प्रमुख है। कोरकू लोग परंपरागत रूप से अपनी भाषा का अस्तित्व बनाए हुए हैं। किंतु अब ये भी लोग सभ्य समाजों से अपना रिश्ता बनाने लगे हैं। ये सारी जनजाति हिंदी प्रयोग को भी प्रमुखता देती है। ये लोग हिंदी तो बोल लेते हैं पर इनकी हिंदी में भी कोरकू भाषा का प्रभाव देखने को मिलता है। सभ्य समाजों से विचारों के आदान-प्रदान के लिए हिंदी भाषा ही सर्वाधिक सफल माध्यम है। मेलघाट क्षेत्र में रह रही यह जनजाति अपनी मातृभाषा का प्रयोग केवल अपने समाज में ही करती है अन्यत्र हिंदी का ही प्रयोग होता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनी भाषा को आगे बढ़ाने का उनका यह प्रयास आज की आधुनिकता के कारण कम होता जा रहा है जिसका मुख्य कारण रोजी-रोटी की खोज में शहरों में बढ़ता इनका आवागमन ही है। इसीलिए सभ्य समाज के शहरों में इन्हें हिंदी का ही प्रयोग करना पड़ता है।

हिंदी और कोरकू भाषा के शब्दों में हमें बहुत-सा अंतर देखने को मिलता है। कोरकू के कुछ शब्दों का उदाहरण इस प्रकार है:-

अई-मौसी	आपे-तुम	इठू-पढ़ना
आबा-पिता	आवु-अपन	ऐन-यहाँ पर
अए-अभी	अगसो-आकाश	इयेन-मेरा
इंगाँ-इधर	इंज-मैं	ऐना-आईना

उपर्युक्त शब्दों से हमें ज्ञात होता है कि हिंदी और कोरकू में कितना अंतर है। आज ये कोरकू लोग अपनी भाषा से ज्यादा हिंदी बोलना भी पसंद करते हैं। इन लोगों द्वारा बोली जानेवाली हिंदी एक अलग पहचान है। इनकी हिंदी भाषा व्याकरणिक दृष्टि से भले ही व्यवस्थित ना हो पर भाव संप्रेषण की और विचारों की आदान-प्रदान की दृष्टि से सही है।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि कोरकू जनजातियों का सभ्य समाजों से बढ़ता संपर्क, हिंदी भाषा से अपनी भाव अभिव्यक्ति ही उन्हें प्रगतिशील बनाने की उषा की पहली किरण है, इसी से ही हम भविष्य में आधुनिक कोरकू समाज की परिकल्पना कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. समरी ऑफ दी रिपोर्ट - रिपोर्ट ऑफ धारणी ट्राइबल डवलपमेंट ब्लाक इन 'मेलघाट' तालुका जिला अमरावती अध्याय-1 पृ. सं. 1
2. महाराष्ट्र स्टेट गज़ेटियर - अमरावती जिला - पृ. सं. 7
3. कोरकू लोकगीतों का साहित्यिक अध्ययन - डॉ. अजितसिंह पौहार - पृ. सं.- 16
4. The tribes and caste of Central Provinces India, P.V. Rossel and Tribal Vol. 3 and 4 page-550
5. महाराष्ट्र स्टेट गज़ेटियर - अमरावती जिला - पृ. सं. 140
6. कोरकू लोकगीतों का साहित्यिक अध्ययन - डॉ. पौहार - पृ. 7

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गांधीवाद

● डॉ. पंकज तिवारी

अल्बर्ट आइन्सटाइन के बाद महात्मा गांधी को 20वीं शताब्दी का सबसे महान व्यक्ति माना गया है जिनके संबंध में स्वयं आइन्सटाइन ने कहा था, "आने वाली पीढ़ियाँ इस बात पर विश्वास नहीं करेंगी कि हाड़-मांस से बना कोई ऐसा व्यक्ति भी धरती पर कभी पैदा हुआ था। आजादी के लिए सत्य और अहिंसा का जो मंत्र गांधी जी ने दिया, उससे न केवल भारत आजाद हुआ, बल्कि दुनिया भर में गुलामों की आजादी का मार्ग प्रशस्त हुआ। गांधीवादी मूल्य हर युग में प्रासंगिक है।"

असत्य को सत्य से, हिंसा को अहिंसा से, घृणा को प्रेम एवं सद्भाव से, अंधकार को प्रकाश से विजय प्राप्त करने वाली शक्ति ही गांधीवाद है। जिन्हें इस महान राष्ट्र ने बापू की संज्ञा देकर पूजा और महात्मा मानकर जिनका अनुकरण किया। वहीं सुभाष चंद्र बोस ने राष्ट्रपिता जैसी अमर उपाधि से विभूषित किया।

गांधी जी के व्यक्तित्व के संबंध में पं. जवाहर लाल नेहरू ने कहा था - "इस दुबले-पतले छोटे से इंसान के भीतर इस्पात का कुछ था, चट्टान जैसा। उसमें एक राजसीयता और गरिमा थी, जो दूसरों को खुशी-खुशी उनकी बात मान लेने के लिए बाध्य करती थी।"[1]

अमेरिका के धर्म शिक्षक, डॉ. जॉन ने माना है कि आज "महात्मा गांधी" समग्र संसार के जीवन के मध्य में खड़े हैं, और कई शताब्दियों

● प्रवक्ता, राजनीतिशास्त्र, जगतगुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविदयालय, चित्रकूट (उ.प्र.)

का भाग्य अपनी मुट्ठी में बंद किए हुए हैं।" उनके जीवन में मधुरता और आलोक की पूर्णता थी। बुद्ध के बाद संपूर्ण मानवता को इनसे अधिक सहारा देने वाला दूसरा नहीं मिलता। वे निश्चय ही महत्तर शक्ति के वाहक और प्रतिमूर्ति थे। फ्रेंसिस नीलसन ने गांधी को अद्वितीय माना है। गांधी जी के अनुपम व्यक्तित्व ने जनसमुदायों के विचारों, भावों और कार्यों को प्रभावित किया। उन्होंने अविजित और अजेय शक्ति बनकर प्रेम, अहिंसा और सत्य के विधान का निरूपण किया। यह सही है कि "वह संपूर्ण व्यक्तित्व को आकर्षित करते थे, हृदय को, मस्तिष्क को और उन प्रवृत्तियों को, जो मनुष्य को संपूर्ण आत्मदान के लिए प्रेरित करती हैं।"[2]

वर्तमान समय में गांधीवाद की प्रासंगिकता का मुद्दा अकादमिक बहस का प्रिय विषय है, लेकिन एक महत्वपूर्ण तथ्य जिसे भुलाया नहीं जाना चाहिए वह यह है कि मानवता के प्रति गांधी ही के योगदान के बारे में जागरूकता पहले के मुकाबले कहीं अधिक बढ़ी है। ऐसे लोगों की भी संख्या कम नहीं है जो यह मानते है कि गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव कम हो रहा है और राष्ट्र उनको केवल उनकी जयंती एवं पुण्यतिथि पर ही याद करता है।

गांधीवाद की प्रासंगिकता का तात्पर्य यह है कि यह सिद्धांत आज किस सीमा तक नवीन परिस्थितियों में वर्तमान समस्याओं, चुनौतियों के समाधान में सहायक सिद्ध हुआ है। समकालीन समाज में विकास से जुड़ी समस्याओं के संदर्भ में गांधी जी के चिंतन में विशेष अभिरुचि ली जा रही है। वैसे गांधी जी ने विकास का कोई सिद्धांत प्रस्तुत नहीं किया। परंतु उन्होंने भिन्न-भिन्न अवसरों पर मनुष्य के मार्गदर्शन के लिए जो ओजस्वी विचार प्रस्तुत किए, उन्हें मिलाकर विकास का एक प्रतिरूप उभारा जा सकता है।

गांधी जी ने सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों के आधार पर मानवता को समाज के नव-निर्माण की नई राह दिखाई। गांधीवाद का मुख्य सरोकार मनुष्य के नैतिक जीवन से था। गांधीवाद ने राजनीति और नैतिकता के बीच पुल का निर्माण करते हुए यह तर्क दिया कि राजनीति के क्षेत्र में साधन और साध्य दोनों समान रूप से पवित्र होने चाहिए।

गांधीवाद का मानना है कि सांसारिक जीवन की उन्नति के लिए आध्यात्मिक जीवन का तिरस्कार करना बुद्धिमत्ता नहीं है जो राजनीति धर्म से विहीन है, वह मृत्युजाल के तुल्य है और आत्मा को पतन के गर्त में धकेलती है।

गांधीवाद ने साम्यवादी सिद्धांतों को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने समस्त भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के स्थान पर आवश्यकताओं को संयत करने पर बल दिया। शरीर-श्रम को विशेष महत्व दिया। इसके अनुसार प्रत्येक सक्षम व्यक्ति को अपनी भौतिक आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन में योग देने के लिए स्वयं शरीर-श्रम करना चाहिए। उनका मानना है कि इच्छाओं को संयत रखकर ही उनकी पूर्ति की जा सकती है।

यह विचारधारा सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलना अपने-आप में श्रेयस्कर मानती है तथा सत्याग्रह ही सामाजिक क्रांति का गांधीवादी तरीका है। यह निर्विवाद सत्य है कि इस विचारधारा के प्रर्वतक महात्मा गांधी को शताब्दी के सबसे विलक्षण व्यक्तियों में से एक बताया गया है।

इसी संदर्भ में मानवता के प्रति गांधी जी के छोड़े संदेश पर नए सिरे से विचार करना अप्रासंगिक नहीं होगा। आज सबसे बड़ा सवाल तो यही है कि क्या वर्तमान युग के मनुष्यों के लिए गांधीवाद प्रासंगिक रह गया है? गांधी जी को हमसे बिछड़ने के करीब 60 साल के दौरान विश्व में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आश्यचर्यजनक उपलब्धियाँ हुई हैं। आज सब तरफ विश्व नागरिकता, वैश्वीकरण और दुनिया के गाँव जैसे छोटे से छोटे दायरे में सिमट आने की बात हो रही है। गांधीवाद का मानना है कि सिद्धांत की कई बातों से व्यवहार का थोड़ा-सा अंश ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसी मान्यता में एक वैकल्पिक विश्वदृष्टि समाहित है- प्रकृति के साथ तालमेल, सादा जीवन उच्च विचार, दूसरे की पीड़ा अनुभव करना, और ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना जिसमें व्यक्ति गरिमायम जीवन जी सके। ये एक ऐसी विश्व-दृष्टि के परिचायक हैं जो 'वसुधैव कुटुंबकम' की महान अवधारणा पर आधारित है।

गांधीवाद ने एक वैकल्पिक जीवन शैली, वैकल्पिक जीवन-दृष्टि तथा सामाजिक बदलाव, शांति और स्थिरता के लिए व्यावहारिक नीतियों

व तौर-तरीकों की वकालत की। इसमें मान्यता प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता को पर्याप्त महत्व दिया गया था। "अटल सत्य के इस प्रतीक ने हमें प्रकाश दिया, उसने हमारे अंत:करण को जागृत किया।"[3]

यह कोई अतिशयोक्ति नहीं गांधीवाद ने मानवाधिकार आंदोलन को संगठनात्मक ढाँचा दिलाया। अब तक के इतिहास में गांधी जी से पहले बहुत कम लोग हुए जिन्होंने इतनी बड़ी संख्या में जनता को एक जुटकर अत्याचारी ताकतों का निर्भीक होकर सामना किया। इस प्रक्रिया में गांधी जी एक उत्कृष्ट क्रांतिकारी के रूप में उभरे। उन्होंने लोगों को अपने अधिकारों के बारे में सोचने को प्रेरित किया। 1893 में जब गांधी जी एक मुकदमे की पैरवी के लिए भारत से दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए थे तो वे एक नौजवान थे। भारत आने पर गांधी जी ने सर्वप्रथम चंपारन में पहल की। चंपारन सत्याग्रह ने मानवाधिकारों के संरक्षण में एक नए युग का सूत्रपात किया।

"सत्याग्रह का यह अर्थ है कि विरोधी को पीड़ा देकर नहीं बल्कि स्वयं कष्ट उठाकर सत्य की रक्षा करना।"[4]

सत्याग्रह एक विधेयात्मक एवं अप्रतिहत शक्ति के रूप में कार्य करता है। उसका प्रभाव अनुभव सिद्ध है।"[5]

गांधीवाद में स्वतंत्रता के लिए उठाए गए अहिंसात्मक आंदोलन ने सामाजिक न्याय और स्वतंत्रता के सबसे बड़े जनांदोलन का रूप ले लिया। गांधीवाद ने हमें सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और सामाजिक जागरूकता सुनिश्चित करने के लिए जो प्रेरणा दी उसे हम आगे नहीं बढ़ा पाए हैं। सामाजिक बदलाव का गांधीवादी जोश गांधी जी के साथ ही समाप्त हो गया लगता है। उनकी मृत्यु के पश्चात के कार्यकाल में उनके बाद के नेता और उनकी प्राथमिकताएँ आशा के अनुरूप नहीं रही हैं। उन्हें गैर गांधीवाद तो नहीं कहा जा सकता, मगर गांधी जी के स्वप्न को पूरा करने की दिशा में प्रयास कोई खास आगे नहीं बढ़े। स्वदेशी की धारणा, गाँवों को आत्म निर्भर बनाने की सोच, भारत के पाँच लाख गाँवों में से प्रत्येक में बुनियादी सुविधाएँ जुटाने के प्रयास और जातिवाद एवं वर्ग विभेद का उन्मूलन जैसी गांधीवादी मुहिम एक सीमा पर आकर ठहर गई।

पिछले 60 वर्षों में स्वतंत्र भारत ने जीवन के कई क्षेत्रों में शानदार उपलब्धि अर्जित की है। भारत ने विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अर्थव्यवस्था,

उद्योग, शिक्षा जैसे क्षेत्रों में विश्व में अपनी एक अलग छवि बनाई है। किंतु अभी भी भारत की 40 प्रतिशत जनता को दो वक्त की रोटी ठीक से नहीं मिल पा रही है। यह गंभीर चिंता का विषय है।

आजादी के छह दशक बाद भी इन 40 प्रतिशत लोगों को पहनने के लिए वस्त्र, खाने के लिए दोनों समय का भोजन, रहने के लिए मकान एवं न्यूनतम स्वास्थ्य सुविधाएँ भी नसीब नहीं होतीं। क्या यह शर्म की बात नहीं है यह सब कैसे हुआ? नैतिक मूल्यों संबंधी हमारी धारणाएँ पैसे से निर्धारित होने लगी हैं। पैसा आदमी की अच्छाई या बुराई का एक मानदंड बन गया है। किसी व्यक्ति का ज्ञान, उसकी बौद्धिक उपलब्धियाँ, क्षमताएँ, नैतिक मूल्य, मानवीय गुण व कलात्मक क्षमताएँ अब कोई माने नहीं रखतीं। अगर कोई कलाकार गरीब है तो उसे कोई पूछने वाला नहीं है। गांधीवाद विचारधारा में इसका क्या समाधान हो सकता है। क्या हम गांधी जी के कुछ आदर्श अपने जीवन में अपना सकते हैं। गांधीजी के पुराने नुस्खे आज भले ही पुराने एवं निरर्थक भले ही नजर आएँ, मगर उनकी बुनियादी नसीहतें, उनका जीवन एवं उनके दिए गए संदेश भरोसेमंद एवं आशाजनक तथा विश्वसनीय भविष्य का मजबूत ढाँचा उपलब्ध कराते हैं।

गांधी जी का कहना था कि अगर हम प्रकृति का ध्यान नहीं रखेंगे और अपनी जरूरतों से ज्यादा संसाधनों का इस्तेमाल करते रहेंगे तो एक समय ऐसा आएगा जब प्रकृति के पास हमें देने को कुछ नहीं रह जाएगा। सीमित संसाधनों वाली दुनिया में अँधाधुँध उपयोग से विकराल स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

प्राकृतिक संसाधनों से संबंधित 'वर्ल्ड वॉच रिपोर्ट' में कहा गया है कि सन् 2020 तक विश्व में 100 से अधिक शहरों में पीने का पानी नहीं मिलेगा। क्या हम कह सकते हैं कि गांधीजी सादे जीवन, सत्य साधनों व साध्य की पवित्रता और मानवता को जिलाए रखने वाले बुनियादी मूल्यों पर जो जोर देते थे वे आज इसलिए अप्रासंगिक हो गए हैं, क्योंकि हम नई शताब्दी में पहुँच गए हैं। अगर ईमानदारी से कहा जाए तो हमने गांधीवाद को गंभीरता से नहीं लिया हमने उसे दरकिनार करने में थोड़ा भी संकोच नहीं किया। गांधीवादी विचारधारा में साम्राज्यवाद एवं उत्पीड़न

को बढ़ावा देने वाली अंग्रेजी शासन प्रणाली का विरोध किया जाना चाहिए न की अंग्रेजों का।

आज हम जिसे गांधीवाद कहते हैं, दरअसल वह गांधीजी की गतिविधियों और उनके जीवन से उत्पन्न हुआ है। वे गांधीवाद के संबंध में स्वयं कहा करते थे "गांधीवाद कोई वस्तु नहीं है मैं अपने बाद कोई संप्रदाय नहीं छोड़ना चाहता हूँ।" वे चाहते थे कि उन्होंने जीवन में जो कुछ किया उसके लिए उन्हें याद किया जाए न कि जो कुछ उन्होंने कहा उसके लिए। यही वह विशेषता है जो उन्हें आधुनिक दार्शनिकों से भिन्न एवं अलग करती है।

❑

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. पं. जवाहर लाल नेहरू - आटोबायोग्राफी - पृष्ठ 129
2. डॉ. विश्वनाथ परवणे - आधुनिक भारतीय चिंतन - पृष्ठ 192
3. सुमन रामनाथ - हमारे नेता और निर्माता - पृष्ठ 47
4. यंग इंडिया - 14 जनवरी, 1920
5. डॉ. पट्टाभिसीतारमैया - गांधीवाद- पृष्ठ 70

गीता के उपदेश अब भी व्यावहारिक हैं

● डॉ. कप्तान सिंह यादव

[प्रवृत्ति-निवृत्ति, निजत्व-परत्व, परिग्रह-अपरिग्रह, पूँजीवाद-समाजवाद, राष्ट्रवाद-क्षेत्रवाद, मानवीयता-जातीयता, दलवाद-परिवारवाद, आरक्षण-अनारक्षण आदि से संत्रस्त भारतीय जन मानस एवं लोकतंत्र आशानुरूप विकास एवं सफलता प्राप्त नहीं कर सका। इस परिदृश्य में 'श्रीमद्भगवद् गीता' का सर्वग्राह्य हितानुबंधी चिंतन एवं धर्म रूप क्रियात्मक अनुशासन प्रत्येक स्थिति में मनुष्य को सहजता प्रदान करने की सामर्थ्य रखता है।]

भारतीय साहित्य के आकरग्रंथ 'महाभारत' के भीष्मपर्व में पच्चीस से बयालिस अध्याय पर्यंत तृतीय पांडव अर्जुन को दिया गया उपदेश 'श्रीमद्भगवद्गीता' नाम से प्रसिद्ध है। कार्याकार्य के निर्णय में उपयोगिता की दृष्टि से हमारे विज्ञ पूर्वपुरुषों ने अठारह अध्याय इस महाभारतीय अंश को दिए हैं। भगवान् कृष्ण द्वारा प्रस्तुति के फलस्वरूप यह संज्ञा साभिप्राय है, जिसे संक्षिप्तत: गीता कहा जाता है। इसके संवाद तथा शरीर, आत्मादि विषयक विवेचन उपनिषदों से पर्याप्त साम्य रखते हैं। अर्जुन के विषाद का बीज 'अनीशया शोचति मुह्यमान:' रूपेण उपनिषद्-वचन में द्रष्टव्य है। आत्मा की नित्यता के प्रतिपादक पद्य का उत्तरार्द्ध 'अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे' 'कठोपनिषद्' में अक्षरश: उपलब्ध है। अत: उपनिषद् साहित्य इसके उपजीव्य के रूप में स्वीकरणीय है किंतु रणक्षेत्रीय धर्म-कर्म-मीमांसा ने इसे जीवन-दर्शन का व्यावहारिक आदर्श बना दिया है।

● अध्यक्ष संस्कृत विभाग, आदर्श कृष्ण महाविद्यालय, शिकोहाबाद (उ.प्र.)

यह ग्रंथ 'महाभारत' की उस घटना का परिणाम है, जिसके अनुसार युद्धार्थ स्ववंशीय कुरुक्षेत्र नामक रणभूमि में अवतरित वीर अर्जुन अपने गुरु आदि आत्मीय जनों की हानि से विषादग्रस्त होकर स्वसारथी एवं शुभ-चिंतक श्री कृष्ण से 'श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यम्' कहते हुए युद्ध न करने की मन:स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं। उन्हें क्षत्रिय धर्म के अनुकूल युद्ध रूप कर्तव्य में प्रवृत्त करने के उद्देश्य से प्रस्तुत उपदेश का अवतरण हुआ है। अर्जुन की शंकाओं के समाधान हेतु शरीर, इंद्रीय, मन, बुद्धि , आत्मा, कर्म, धर्म, ध्यान, त्याग, संन्यास, सृष्टि, प्रकृति, अध्यात्म, मोक्ष आदि की शास्त्रसम्मत व्यावहारिक विवेचना की गई है। करणीय कर्म के संबंध में सामयिक नीति-निर्धारण की दृष्टि से ज्ञान और उसके करने में तन्मयता की अपेक्षा से, श्रद्धा, भक्ति योगादि को निरूपित किया गया है। दृश्यमान जगत् की अनित्यता, आत्मरूप परमतत्व की नित्यता, पुनर्जन्मादि का प्रतिपादन किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन के चंचल मन को स्थिर एवं कार्मोन्मुख करता है। ग्रंथ के स्रष्टा तथा उपदेष्टा का अंतत: एक ही लक्ष्य दृष्टिगोचर होता है कि अर्जुन अपने कर्तव्य कर्म के प्रति सर्वात्मना समर्पित हों। एतदर्थ प्रसंगागत समस्त विषय आनुषंगिक है। ग्रंथस्थ उपदेश के उपक्रम, उपसंहार और परिणाम से यह स्वत:सिद्ध है।

जीवन एक यात्रा है, जिसमें विविध समस्याओं का आना स्वाभाविक है। अनेक अवसरों पर मनुष्यों की बुद्धि कार्य-अकार्य का निर्णय करने में असमर्थ हो जाती है। ऐसी स्थिति में उसे मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है, जिसे व्यवहार जगत् से हम सरलतया प्राप्त कर सकते हैं। इस तथ्य को कर्म अथवा वृत्त-विचिकित्सा की स्थिति में 'यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथा:' वचन से 'तैत्तिरीयोपनिषद्' स्पष्ट कर देती है। 'धर्मसम्मूढ़चेता:' अर्जुन को 'नष्टो मोह:' की अवस्था प्रदान करने वाले इस ग्रंथ का दो मित्रों के संवादरूप में अवस्थित उपदेश व्यवहार-दर्शन का अनुपम प्रदीप है, जिसकी वैचारिक प्रभा कुविचारों को सुविचारों में, असत्कर्मों को सत्कर्मों में, कदाचार को सदाचार में, अधर्म को धर्म में, निराशा को आशा में, दुख को सुख में और शोक को हर्ष में परिवर्तित करने की सामर्थ्य रखती है।

मनुष्य के प्रत्येक कार्य की विचारणा का प्रारंभ उसके मानस व्यापार से होता है। इसके बिना वह किसी भी व्यवहार में प्रवृत्त नहीं हो सकता है। सुख, दुख आदि की अनुभूति का साधनरूप संकल्प-विकल्पात्मक मन मनुष्य के समस्त साध्यों को साधित करने वाली सूक्ष्म अंत:इंद्रिय है। कार्य, गति, कालादि के क्षेत्र में असीमित क्षमता रखने वाला मन स्वभावत: चंचल, अस्थिर, प्रमथनशील, बलवान और दृढ़ है। 'सर्वसहायत्वादुभयात्मकं मन:' के अनुसार उभयात्मक इंद्रियरूप चंचल स्वभावी इसके व्यापार से प्रत्येक व्यक्ति अर्जुनवत् उद्वेलित होता है। सर्वसहायक यह विविध इंद्रियों से संयुक्त होकर विविध विषयों को ग्रहण करता है। एक ही समय में अनेक विषयों से संबंद्ध ग्यारहवीं इंद्रिय मन के विभाजनवशात् दुर्बल होने पर व्यक्ति की शक्ति क्षीण हो जाती है। इसके विपरीत एकस्थ परमशक्तिसंपन्न मन शक्तिशाली व्यक्तित्व का निर्माण करता है, जिसमें सफलता की रहस्यात्मक सत्ता होती है। इस तथ्य को 'यत्र योगेश्वर: कृष्णो... तत्र श्रीविजयो' के रूप में गीता के अंतिम छंद द्वारा निरूपित किया गया है। अत: अर्जुन के मन को युद्ध के प्रति एकाग्र करने की दिशा में अनेक प्रयत्न किए जाते हैं क्योंकि अयावृत स्वर्ग द्वाररूप इसे मानसिक प्रतिबद्धता के बिना जीतना दुष्कर है। वस्तुत: अर्जुन के अस्थिर मन को स्थिर करने में यौद्धिक सफलता की कामना पर्यवसित है। मननिग्रहरूप मानस एकाग्रता विशेष कार्यों के लिए ही नहीं अपितु सामान्य कार्यों के लिए भी अत्यंत महत्व रखती है। इसी मानस तत्परता के परिणामस्वरूप राम, कृष्ण, गांधी आदि अपने-अपने कार्यों में प्राय: सफल रहे हैं। इस प्रकार गीता की मानस विवेचना सार्वजनिक जीवन से संबंध रखती है।

किसी भी कार्य में प्रवृत्ति से पूर्व निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। इस सामर्थ्य के फलस्वरूप बुद्धि को मन से श्रेष्ठ कहा गया है। इसी उत्कृष्टता के कारण इसे महान् अथवा महत्तत्व की संज्ञा प्राप्त है। निश्चयात्मक बुद्धि की अनेकरूपता गीता को स्वीकार्य नहीं है। अनेक मान्यताओं के प्रभाववशात् बुद्धिबहुत्व की स्थिति में मनुष्य निर्णय करने में असमर्थ हो जाता है। इसके विपरीत एकरूप अचला बुद्धि का निर्णय किसी हेतु से प्रभावित नहीं होता है। इसीलिए अर्जुन को फलहेतु की

कृपणता का प्रतिपादन करते हुए बुद्धि की शरण ग्रहण करने का परामर्श दिया जाता है। वस्तुत: अचला बुद्धि मनुष्य का गौरव है। शरीर रथ के संचालन में सारथित्व की मान्यता इसके अचल एकत्व को ही प्रतिपादित करती है। स्थितप्रज्ञ गीता का आदर्श पुरुष है। बौद्धिक स्थिरता एवं क्षमता से ही मनुष्य के स्तर का निर्धारण होता है। सफलता उसी को प्राप्त होती है, जो बौद्धिक निश्चय का धनी होता है। युद्ध के अवसर पर अर्जुनवत् बुद्धिमोह की स्थिति सर्वत्र चिंतनीय होती है। निर्णय के समय अनिर्णयात्मक अवस्था में व्यक्ति लौकिक अथवा पारलौकिक कोई सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। इस व्यावहारिक सत्य की दृष्टि से ही गीता में बुद्धि की विशद विवेचना की गई है, जिसे मानव-जीवन के लिए परम उपयोगी कह सकते हैं।

मानवीय जीवन की सार्थकता हेतु मान्य चार पुरुषार्थों में धर्म प्रथम गृहीत है। भारतीय मनीषा मनुष्य के प्रत्येक कार्य एवं व्यवहार में धर्म की अपेक्षा रखती है। लोकधारक धर्म का संबंध मानवोचित व्यावहारिक मूल्यों से होता है, जिसे मनुस्मृतिकार ने 'आचार: परमो धर्म:' के रूप में प्रतिपादित किया है। गीता में यह कर्तव्य कर्म का बोधक है। इस तथ्य को कर्म निष्पादनार्थक 'कृ' धातु के साथ 'धर्म' शब्द से प्रारंभ 'श्रीमद्भगवद्गीता' में अर्जुनोक्त 'धर्मसम्मूढ़चेता:' वचन स्वयं सिद्ध कर देता है। वस्तुत: अर्जुन की मूढता कर्तव्य कर्म विषयक ही है। अर्जुन के संबंध में स्वधर्म-परधर्म-विवेचना भी इसी मान्यता को पुष्ट करती है। धर्मरूप कर्म के अनुष्ठान से ही व्यक्ति उत्कर्ष एवं अभ्युदय प्राप्त करता है। यही गीता के धर्म-विवेचना का सार है, जिसमें अर्जुनव्यपदेशेन सबका कल्याण निहित है।

धार्मिक भ्रांतियाँ आज हमें राष्ट्रीय स्तर पर दुर्बल कर रही हैं। कथन, श्रवण, पठन मात्र में धर्म-मान्यता से हमारा समाज चिरकाल से दिक्भ्रमित है, जिसके परिणामस्वरूप पत्थरों का धार्मिक उन्माद असंख्य व्यक्तियों की जीवनलीला समाप्त कर चुका है। मानवीय गुणसंपदा को धारित करने वाले धर्म का मनुष्य के विनाश में प्रवृत्त होना महती विडंबना है। धर्मनिरपेक्ष भारत की विधि व्यवस्था धर्म के नाम पर आत्मसमर्पित है, जिसे किसी भी दृष्टिकोण से उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है।

धर्मनिरपेक्षता का मूल अर्थ एवं उद्देश्य राष्ट्रीय विधि व्यवस्था में किसी भी धर्म की अपेक्षा न रखना है। कर्म के रूप में गीता का धर्म सर्वव्यापकत्व से मंडित है। इसीलिए समस्त धर्मावलंबी इसे स्वीकार करते हैं। राष्ट्र को धर्म से महत्तर मानने से ही हम धर्मनिरपेक्षता को सार्थक कर सकते हैं। विविध धर्माचार्यों द्वारा अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ मानना, धर्म के नाम पर राष्ट्रीय नीतियों का विरोध करना धर्मनिरपेक्षता नहीं है। गीता की कर्मपरायण धर्ममीमांसा राष्ट्रीय विकास एवं राजनीति को नई दिशा दे सकती है।

भारतीय परंपरा गीता को योगशास्त्र का ग्रंथ मानती है किंतु इसके योग को परमात्मा के मेलरूप विशेष से संबंधित मात्र नहीं कहा जा सकता है। गीता के योग में विषाद जैसी मानवीय दुर्बलताओं को भी स्थान प्राप्त है, जिसे ज्ञान और भक्ति की सहसामर्थ्य कर्मयोग में परिणत कर देती है। गीता के अनुसार योग एक व्यावृत्ति है, जिसकी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यकता होती है। योगशास्त्रीय चित्तवृत्ति का निरोध सर्वत्र उपादेय है। गीता के संदर्भ में अर्जुन के सर्वत: निरुद्ध चित्त का युद्धाकार होना योग है। यही देश, काल एवं परिस्थिति सापेक्ष कर्मकौशल है। प्रवृत्तिपरक भी यह योग फलादि की इच्छा से सर्वथा रहित है। निवृत्तिनिष्ठ प्रवृत्ति के इस आदर्श से गीता का योग लोकार्थ एवं परमार्थ का समन्वित मार्ग उद्घाटित करता है, जिससे इसकी व्यावहारिक महत्ता स्वयं सिद्ध हो जाती है। पातंजल योग की भी अष्टांग विवेचना शरीर, इंद्रिय, प्राणादि के अनुशासन के रूप में व्यवहार को महत्व देती है।

'ज्ञानं सम्यकवेक्षणम्' के अनुसार समुचित जानकारी को ज्ञान कह सकते हैं। जिस प्रकार दीपक का प्रकाश समीपवर्ती वस्तुओं को प्रकट कर देता है, उसी प्रकार ज्ञान संपर्क में आने वाले पदार्थों की पूर्ण जानकारी दे देता है। कार्य एवं अकार्य के निर्णयाधार ज्ञान के विषय में गीता का 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' वचन अक्षरश: सत्य है। प्रकाशरूप ज्ञान का मार्ग ज्ञान-योग कहलाता है। ज्ञानयोगी प्रकाशपथ का चयन करता है। इस मार्ग पर जीवन-यात्रा के अवरोध प्रकट मात्र ही नहीं अपितु इनका निराकरण भी हो जाता है। जीवन की सत्यता से परिचित

ज्ञानयोगी सांसारिक द्वंद्वों से विचलित नहीं होता है। गीता का ज्ञानयोग अर्जुन के मोहजन्य विषाद को सदा-सदा के लिए उन्मूलित कर देता है।

इष्ट की सेवा में तन्मयता का नाम भक्ति है। गीता में भक्ति का प्रारंभ प्रपत्ति से होता है। प्रपत्ति सर्वतोभावेन समर्पण है, जिसमें सेव्य के अनुकूल कार्य का संकल्प तथा प्रतिकूल कार्य की वर्जना रहती है। अर्जुन का भगवान् कृष्ण की शरण में जाना प्रपत्ति है, जिसे 'त्वां प्रपन्नम्' के रूप में प्रस्तुत किया गया है किंतु इससे कर्म बाधित नहीं होता है। भक्त को अपना कार्य स्वयं करना है। भगवान् का आदेश 'युद्धाय कृतनिश्चय:' मिलता है। गीता का भगवान् सारथी के रूप में स्वयं क्रियाशील है। वस्तुत: हमारी अवतारवाद की विचारधारा प्रवृति की ही समर्थक है। ऐसा कोई अवतार नहीं, जो संघर्ष से विरत रहा है। भगवान् कृष्ण के संबंध में यह तथ्य गीता उद्घोषित करती है। सारथीरूपेण सक्रिय भगवान् युद्ध से मुक्त है किंतु भक्त को 'युद्धाय युज्यस्व' का निर्देश है। इस प्रकार गीता का भक्ति योग कर्मयोग का पोषक है। कर्तव्य कर्म का निर्वहन ही भगवान् की सच्ची सेवा है।

कर्म सृजनात्मक है। सृष्टि में उसका अद्वितीय योगदान है। उसके अंग मनुष्य का कर्म से अलगाव किसी दृष्टि से उचित नहीं है। गीता में 'कर्म' शब्द परिस्थिति सापेक्ष उस विशेष क्रिया का बोधक है, जिसके न करने से व्यक्ति अपने 'धर्म' से च्युत होकर निंदनीय स्थिति को प्राप्त करता है। कर्ता का कर्ममय हो जाना कर्मयोग है। अग्नि को समर्पित अग्निरूप अयसवत् कर्म में तत्पर कर्ता कर्म हो जाता है। अर्जुन के संदर्भ में कर्ता की यही स्थिति गीता को अभीप्सित है, जिसे सफलता का मूलमंत्र कह सकते हैं। गीता-प्रतिपादित कर्मयोग का यह सिद्धांत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समान महत्व रखता है। फलादि में अनासक्तभाव इसे निष्काम कर्मयोग की महतीय संज्ञा प्रदान करता है, जिसमें प्रवृत्ति-निवृत्ति का समन्वित आदर्श सृष्टिचक्रीय व्यापक मूल व्यवस्था को आत्मसात करता प्रतीत होता है।

चेतन ब्रह्म की सत्ता आत्मिक चेतना के रूप में मनुष्य के अंदर अवस्थित है। अचेतन प्रकृति से उत्पन्न शरीर जड़ है। ब्रह्मरूप आत्मिक चेतना अपनी शरीरगत सत्तापर्यंत अचेतन शरीर को गति प्रदान करती है।

तद्वत सत् चित् एवं आनंदस्वरूप परब्रह्म की शक्तिमालेण ज्ञान, भक्ति एवं कर्म का समुच्चय जीव जगत को पूर्णता प्रदान करता है। इनमें से किसी एक या दो से यह पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती है। इसीलिए 'श्रीमद्भगवद्गीता' में अनेक स्थलों पर ज्ञानादि का सांकर्य दिखाई देता है। 'सांख्ययोग' नामक द्वितीय अध्याय में कर्म का बहुलता से वर्णन किया गया है। अत: गीता लौकिक तथा अलौकिक अभ्युत्थान के क्षेत्र में ज्ञानादि के समन्वित मार्ग का समभावेन प्रतिपादन करती है, जो व्यावहारिकता की कसौटी पर सत्यता के योग्य है।

सृष्टि का कण-कण सुव्यवस्थित एवं परिवर्तनशील है। सांसारिक जीवन-चक्र में जन्म, मरण, पुनर्जन्मादि की नियत व्यवस्था है। इस परिवर्तन में उत्तरोत्तर स्थिति हेतु मनुष्य को कर्तव्य कर्म में तत्पर करने के उद्देश्य से 'कर्मवाद' का सिद्धांत मान्य किया गया है। इसके अनुसार व्यवहार करते हुए सामान्य जन भी श्रेय को प्राप्त करते हैं किंतु प्रार्थनामात्र से अभीष्ट सिद्धि की कल्पना से कर्मसिद्धांत शिथिल हुआ है। प्रार्थना से प्राप्ति की काल्पनिक विचारणा ने कर्तव्य कर्म में प्रवृत्ति को भी बाधित किया है। कर्मप्रवृत्ति में ह्रास की स्थिति अहितकर तथा सृष्टि-चक्र के प्रतिकूल है। इसी दृष्टि से 'श्रीमद्भगवद्गीता' अर्थना, अर्चना अथवा प्रार्थना की उपेक्षा के साथ कर्तव्य कर्म को अत्यधिक महत्व देती है, जो मनुष्य के लिए सर्वथा कल्याणप्रद है।

'अध्यात्म' मनुष्य के चतुर्थ पुरुषार्थ 'मोक्ष' का श्रेष्ठ साधन है। इसे एकता में अनेकता और अनेकता में एकता की अनुभूति कराने वाला आदर्श यथार्थ कह सकते हैं। आत्मविषयक ज्ञानरूप यह अध्यात्म भेदबुद्धि को नष्ट कर देता है। अभेदबुद्धि की स्थिति में मनुष्य के समस्त व्यवहार आत्मरूपेण प्रवृत्त होते हैं और जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण निर्मित होता है, जिसके परिणामस्वरूप वह द्वंद्वात्मक संसार से अप्रभावित रहता है। वस्तुत: द्वंद्व की स्थिति में व्यक्ति लोकार्थिक अथवा परमार्थिक कोई सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। इसीलिए युद्ध के मैदान में अर्जुन को निर्द्वंद्व करने की दिशा में सफल प्रयत्न किए जाते हैं।

संसरणशील संसार में व्यक्ति के विचार एवं व्यवहार प्राय: परिवर्तित होते रहते हैं। मनुष्य के विचार और व्यवहार के रूप में अंत: एवं बाह्य

संघर्ष के रहने पर उसका संतप्त रहना नियत है। अर्जुन इसी से विषादग्रस्त है जिसका समापन 'विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु' के अनुसार व्यवहार में ही होता है। अत: गीता सामान्य व्यवहार का प्रतिपादन करती है। अशोक, अभय, अममत्व, मननिग्रह, वैचारिक स्थिरता, चैत्तिक एकाग्रता, धैर्य, समता, शांति, निरहंकार, इंद्रियवश्यता, कर्मतत्परता, स्थितप्रज्ञा, अक्रोध, अस्पृहा आदि इसके आधार हैं। इसी से अर्जुन को दु:खसंयोगवियोग प्राप्त होता है। यही सफलता गीता को दु:खाभावरूप मोक्ष के क्षेत्र में 'अध्यात्म' दर्शन की मान्यता प्रदान करती है।

अनासक्तभावेन कर्तव्य कर्म करने से प्राप्त संतोषप्रद सुभग स्थिति को गीता ब्रह्मानंद के समकक्ष मान्य करती है, जिसे 'अशक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुष: के रूप में देखा जा सकता है। गीता आत्मसंतोष एवं आनंद के लिए कर्म करने की प्रेरणा देती है, फल के लिए नहीं। वर्तमान के क्रियात्मक त्याग से भविष्य की काल्पनिक समृद्धि गीता को स्वीकार्य नहीं है। कर्मरूप दीपक का निर्वाण अंधकार को अवसर देता है, न कि प्रकाश को। यह सत्यता गीता के व्यवहार-दर्शन की सर्वग्राह्य उज्ज्वल मणि है। लोक-कल्याण के लिए निष्कामभाव से ज्ञान एवं श्रद्धा के साथ कर्तव्य कर्म करने वाला व्यक्ति सदा परमात्मा के समीप रहता है। उसकी श्रवण, चलन, आसनादि समस्त क्रियाएँ उसी के निमित्त संपन्न होती हैं। 'ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशे' के अनुसार अपने हृदय में विद्यमान आत्मरूप परमात्मा से प्राप्त बुद्धि और बल के फलस्वरूप वह सर्वत्र विजय प्राप्त करता है। आत्मभाव से समस्त प्राणियों में एकत्व की प्रतीति उसे निर्भय एवं निष्पक्ष कर देती है। आत्मरूपेण परमात्मा का साथ उसे सब प्रकार की बांधने वाली चिंताओं से मुक्त कर देता है, जिसे मोक्ष कहा गया है। चराचर जगत् के संपूर्ण पदार्थों में ब्रह्म अथवा परमात्मा का सत्तात्मक ज्ञान उसके साक्षात्कार की अवस्था होती है। कर्तव्य कर्म का अनुष्ठान उसका भजन-पूजन होता है।

मनुष्य की धर्म, अर्थ एवं कर्म विषयक समस्त विकृतियों के लिए 'काम' ही एकमात्र उत्तरदायी है। यह मात्र योनिसंबंध नहीं अपितु समस्त अभिलाषाओं का वाचक है। इसे अंतर्वर्ती परमशत्रु कहा गया है। गीता के अनुसार यह क्रोधादि की शृंखला से मनुष्य को नष्ट कर देता है। यह सब प्रकार की दुष्प्रवृत्तियों का जनक है। 'काम' ही व्यक्ति को अधर्म,

आर्थिक अपराध तथा दुष्कर्म में नियोजित करता है। इसके संयमन से धर्मपरायण अर्थ और कर्म में शुचिता का स्वंय समावेश हो जाता है। विपरीत स्थिति में धर्म, अर्थ तथा कर्म पर इसी का प्रभुत्व होता है। अपनी सूक्ष्मता एवं व्यापकता के कारण यह परमशक्ति संपन्न है। यह ही वह शक्ति है, जिसके फलस्वरूप आज उपभोक्तावाद सफल और समाजवाद एवं साम्यवाद निष्फल हो रहा है। व्यक्ति से विश्वपर्यंत व्याप्त अशांति, तनाव, आतंकवाद आदि इसी की देन है। इस सामर्थ्य को घातक मान कर अध्यात्म के क्षेत्र में 'काम' पर गहन विचार किया है किंतु व्यावहारिक क्षेत्र उपेक्षित रहा है, जिसकी पूर्ति गीता में की गई है। यहाँ कर्मरूप व्यवहार में 'काम' की वर्जना 'तदर्थं कर्म कौन्तेय युक्तसंग: समाचर' में स्पष्टत: परिलक्षित होती है। जीवन के कर्मक्षेत्र में विजय प्राप्त करने के लिए अपने अंदर विद्यमान कामरूप दुर्जय शत्रु को मारना परमावश्यक है, जिसे 'जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्' कथन प्रतिपादित किया गया है।

सत्ता, धनादि से मदोन्मत्त कामुक व्यक्तियों द्वारा सत्यनिष्ठ परिश्रमी जन आज भी पांडववत् पीड़ित किए जा रहे हैं। अपने विनाश की आशंका उन्हें संघर्ष से निरत कर रही है किंतु पंचभौतिक शरीर की आत्यंतिक रक्षा संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त संघर्ष से पलायन की स्थिति शोषण एवं अत्याचार को बढ़ावा देती है, जिसे समाज एवं राष्ट्र के लिए सर्वथा अहितकर मान्य किया गया है। भारतीय जनमानस के श्रद्धेय श्रीकृष्ण ही नहीं अपितु राम भी अत्याचार के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र उठाने में संकोच नहीं करते हैं। उन्हें बलप्रयोग के साथ छली और बालसंपन्न हो छल एवं मुक्ति से भी पराजित करना स्वीकार्य है। श्रीराम बालि को छिपकर मारने में सहज तथा प्रवृत्त होते है। कर्ण पर अर्जुन तथा दुर्योधन पर भीम की विजय में नीतिविरुद्ध क्रिया के आधार श्रीकृष्ण ही रहे हैं। अत: अत्याचारी के प्रति दया अथवा संरक्षण की नीति भारतीय मर्यादित व्यवहार की दृष्टि से हेय है, जिसे गीता भरतवंशीय महाविनाशक युद्ध की धर्म्य-स्वर्ग्य रूप मान्यता से उद्घोषित करती है।

वैचारिक व्यामोह एवं भ्रांतियों से मनुष्य सदा आक्रांत रहा है। फलत: निराशा, विषाद आदि विकार उसके जीवन के अंग रहे हैं। ऐसी स्थिति में धैर्य, उत्साह, विवेकादि का अभाव आत्मघाती हो सकता है। स्व

अथवा पर के कारण होने वाली अद्यकालिक आत्मघात की घटनाएँ इसी ओर संकेत करती हैं। धैर्य आदि से रहित व्यक्ति द्वारा समयोचित निर्णय न ले सकने पर आत्मघात की निवृत्ति में भी उसका जीवन आत्मग्लानि अथवा लोकापवाद से निंदनीय हो जाता है। स्वाभिमानी के संदर्भ में ऐसा जीवन घातस्थानीय ही होता है। लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व अर्जुन को प्राप्त ऐसा आघात गीतोपदेश के संबल से सह्य हो सका और उन्होंने अभूतपूर्व धैर्य एवं उत्साह के साथ संघर्ष करते हुए परमशक्ति संपन्न कौरव पक्षीय विशाल सेना पर विजय प्राप्त की। उससे आज भी हम किसी भी स्तर के आघात को सहन करने में समर्थ हो सकते हैं। व्यक्ति से विश्वपर्यंत किसी भी समस्या के समाधान की क्षमता से संपन्न ऐसा व्यवहार-दर्शन दुर्लभ है। सार्वजनिक जीवन में प्रवेशार्थ इसके प्रचार-प्रसार की महती आवश्यकता है।

इक्कीसवीं सदी के वर्तमान संक्रमणकाल में अंत: एवं बाह्य अनेकानेक विरोधाभास मनुष्य की सहज-जीवन पद्धति को बाधित कर रहे हैं। प्रवृत्ति-निवृत्ति, निजत्व-परत्व, परिग्रह-अपरिग्रह, पूँजीवाद-समाजवाद, राष्ट्रवाद-क्षेत्रवाद, मानवीयता-जातीयता, दलवाद-परिवारवाद, आरक्षण-अनारक्षण आदि से संत्रस्त भारतीय जनमानस एवं लोकतंत्र आशानुरूप विकास एवं सफलता प्राप्त नहीं कर सका है। परिणामत: जातिवाद, क्षेत्रवाद, दलवाद, संप्रदायवाद एवं व्यक्तिवाद जैसी स्वार्थपरक संकीर्ण विचारधाराओं से भारतीय समाज एवं प्रजातंत्र विघटित एवं दुर्बल हो रहा है। संपत्ति और सत्ता की अभिलाषा ने हमारे समाज एवं राजनेताओं को उन्मत्त कर दिया है। मनुष्य कर्म के बिना ही फल की कामना से व्यथित है। कर्मविरोधी प्रवृत्ति उसे शोषण, भ्रष्टाचार, अपहरण, आतंकवाद आदि जनविरोधी नीतियों का अनुकर्ता बना रही है, जिसके कारण वह असहज जीवन जीने को विवश है क्योंकि माननीय विरोध एवं उत्पीड़न में शांति एवं समृद्धि से परिपूर्ण सहज जीवन प्रदान करने की क्षमता नहीं है। बालि, रावण एवं दुर्योधन के दृष्टांत हमारे समक्ष हैं, जो जीवनपर्यंत व्यग्र एवं आशंकित रहे और अंतत: महाकवि भारवि के 'विपदन्ता ह्यविनीत सम्पद:' कथनानुसार आपत्ति को प्राप्त हुए। पूर्ववत् आज भी येनकेन प्रकारेण उपलब्ध भौतिक साधनों की प्रचुरता मनुष्य को स्वाभाविक जीवन नहीं दे सकती। इस तथ्य से अवगत होने पर भी उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाववशात् त्वरित भौतिक साधनों की प्रतिस्पर्धा से अभिशप्त मानव तनावपूर्ण जीवन जी रहा है।

इस परिदृश्य में 'श्रीमद्भगवद्गीता' का सर्वग्राह्य हितानुबंधी चिंतन एवं धर्मरूप क्रियात्मक अनुशासन प्रत्येक स्थिति में मनुष्य को सहजता प्रदान करने की सामर्थ्य रखता है किंतु एतद्विषयक व्यवहार-दर्शन पर यथोचित मीमांसा ने होने के कारण तद्गत आदर्शों का मानव-जीवन में समुचित अवतरण नहीं हो सका है। फलत: हमारा समाज जीवन के धारक एवं परिष्कारक तत्वों के आलोक में अपने व्यवहार का परिचालन नहीं कर रहा है। जीवन के स्पंदन एवं उत्कर्ष की सहहेतुता को धारण करने से कर्म और धर्म पारस्परिक अलगाव के साथ व्यवहार से बहिष्कृत होते जा रहे हैं। भौतिकता के दुर्भेदय अंधकार में मनुष्य का जीवन अवसरापेक्षी हो गया है। व्यक्ति और समाज ही नहीं अपितु राष्ट्र भी न्याय के विपरीत स्वार्थ के प्रति समार्पित हैं। सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आकस्मिक नए-नए गठबंधन तथा परिवर्तन इसी के परिणाम हैं। मानवीय संवेदनाओं का अस्तित्व संकटग्रस्त है। चाहते हुए भी हम एक-दूसरे की सहायता करने में असमर्थ हैं। आतंकवाद ने समग्र मानवीय मर्यादाओं को परिगलित कर दिया है। मानवधिकार आयोग की सफलता को ग्रहण लग गया है। अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् की छाया में कोई भी राष्ट्र सुरक्षित नहीं है। ऐसी स्थिति में गीतागत व्यवहारदर्शन को अपनाकर हम अपनी प्रच्छन्न शक्तियों के उद्घाटन एवं सदुपयोग से लोकार्थ सामयिक कर्म करते हुए सहजतया जीवनयापन कर सकते हैं, जिसे दो मित्रों के संवादरूप में यहाँ उपन्यस्त किया गया है।

गीता-व्यवहार की यह क्षमता हम अपने स्वातंत्र्य आंदोलन में देख चुके हैं। संसारी जीव परमात्मा का अंश है, इस आधार पर गांधी जी भारतीय जनमानस में भेदभावरहित एकता स्थापित करने में सफल हुए और स्वतंत्रता की घोषणापर्यंत विदेशी सुस्थिर सत्ता का विरोध करते रहे। शरीर की वस्त्ररूपेण विचारणा ने वस्त्रवत् शरीर बदलकर बार-बार संघर्ष करने की प्रेरणा दी। इस संबल से हम समस्त अत्याचारों का सफल प्रतिरोध कर सकते हैं। अत: क्रांतिकारियों के समान युवावस्था से ही प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में आज गीता की आवश्यकता है। जीवन के संध्याकालीन पाठमात्र से यह ग्रंथ हमें कृतकृत्य नहीं कर सकता है।

❑

भारतीय संस्कृति में वृक्ष

● डॉ. आर. पी. पाठक
●● डॉ. अमिता पांडेय भारद्वाज

[भारतीय धर्म, जन-जीवन और संस्कृति में वृक्षों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। हमारे पूर्वज जानते थे कि वृक्षों और वनों के कारण ही वर्षा होती है तथा वृक्षों के बिना जीव-धारण दुष्कर ही नहीं, असंभव है। इसीलिए नीम, बरगद जैसे वृक्षों तथा तुलसी जैसे बिरवा देवता-सम पूज्य हैं। जड़ से लेकर शीर्ष की फुनगी तक वृक्ष का प्रत्येक भाग आहार, औषधि, ईंधन आदि के रूप में काम आते हैं। वर्तमान युग में वैज्ञानिक पर्यावरण की स्वच्छता और प्रदूषण के रोकथाम के लिए वृक्षों के महत्व को रेखांकित करते हैं। प्रस्तुत लेख इन्हीं कुछ बातों पर रोचक ढंग से प्रकाश डालता है।]

वृक्ष मनुष्य को जीवित रहने के लिए मूल्यवान प्राणवायु प्रदान करते हैं। इसके हर अंग में प्राणदायिनी, जीवन शक्ति छिपी होती है जो स्वयं में कष्ट सहकर मनुष्य को प्रसन्न रखते हैं। क्षुधा तृप्ति हेतु अनेक प्रकार के फल, रोग निदान हेतु अनेक तरह की जड़ी-बूटियाँ, तन ढकने के लिए वस्त्र, ऋतुओं के विविध आयामों में सर ढकने के निमित्त घर बनाने में इनकी भूमिका बेजोड़ है। अनेक उद्योगों के लिए कच्चा माल

● रीडर शिक्षाशास्त्र, ●● वरिष्ठ प्रवक्ता शिक्षाशास्त्र, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय), नई दिल्ली- 110016

वृक्षों से प्राप्त होता है। पर्यावरण के संतुलन हेतु विषैली गैसों को पीकर अमृत उगलने का सत्कार्य का निवर्हन वृक्ष करते हैं। इतना ही नहीं, वर्षा के आह्वान हेतु पुरोहित का कार्य वृक्ष ही करते हैं। भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने, भू-क्षरण, भू-स्खलन एवं बाढ़ को रोकने में इनकी बहुत बड़ी भूमिका होती है।

अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण वृक्षों की आदिकाल से पूजा-अर्चना होती आ रही है। भारत की आध्यात्मिक एवं धार्मिक संस्कृति के अंतर्गत धार्मिक कृत्यों एवं अनुष्ठानों को संपन्न कराने तथा मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिए वृक्षों का जितना भी गुणगान किया जाए वह कम ही होगा। देवी-देवताओं की पूजा में अर्पित करने के लिए पत्र, पुष्प, फल एवं हवन हेतु समिधाएँ वृक्षों से ही प्राप्त होती है-यही नहीं अपितु भारतीय धर्म एवं संस्कृति में अनेक वृक्ष स्वयं पूजनीय माने गए हैं तथा अनेक वृक्षों में देवताओं का वास माना गया है। कुछ पूजनीय वृक्षों की शृंखला निम्नवत है।

तुलसी- विष्णु प्रिया के रूप में घर-घर में पूजनीय
केले का वृक्ष- गुरु वृहस्पति की पूजा का प्रतीक
बरगद- संतान प्राप्ति हेतु नारी जीवन का प्रमुख आधार
पीपल- ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवताओं का वास
नीम- चौरा माई देवी दुर्गा का प्रतीक
आम- सत्यनारायण कथा, किसी भी पूजा में हवन की पवित्रता का प्रतीक
चंदन- देवताओं के तिलक हेतु प्रयुक्त
खजूर- वरुण देवता का निवास
जम्बू- बादलों को आह्वान करने की शक्ति
बेल- भगवान शिव की प्रसन्नता का प्रतीक
शमी- भगवान अग्नि का स्वरूप
धतुरा बेर- भगवान शंकर के आहार का प्रतीक
कदंब- भगवान कृष्ण की क्रीड़ा हेतु प्रिय

भारतीय जीवन एवं संस्कृति के संदर्भ में पेड़-पौधों की महत्ता बहुत ही निराली है। ये हमारे जीवन में रच-बस गए हैं। इनकी शीतल

छाया, नेत्रों को लुभानेवाली हरियाली जीवनदायिनी प्राण वायु तथा मंद सुगंध के सान्निध्य में हमारे मंत्र द्रष्टा एवं त्रिकालदर्शी ऋषियों एवं मुनियों ने मानव जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक एवं भौतिक जीवन के उन्नयन हेतु अनेक धर्म ग्रंथों की रचना की। इनकी सुंदरता और महानता से हमारे देश के कवियों ने बहुत ही मनोहारी परिवेश का वर्णन अपनी कविताओं में किया है। सूर, तुलसी, रसखान, कालिदास आदि ने अपनी कृतियों के माध्यम से पेड़-पौधों से प्रेम करने का संदेश जन-मानस को दिया। भगवान कृष्ण ने कदंब की डालों पर रास लीलाएँ कीं। भगवान राम ने चौदह वर्षों तक अपना जीवन वृक्षों के सान्निध्य में ही व्यतीत किया। भगवान बुद्ध को पीपल के नीचे ही संबोध की प्राप्ति हुई। वनों के प्रति असीम प्रेम से प्रेरित होकर राम ने दंडक वन, कृष्ण ने वृंदावन, शौनकादि ऋषियों ने नैमिष वन, इंद्र ने नंदन वन तथा पांडवों ने खांडव वन का निर्माण कराया था। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में जीवन के चौथे काल में अनिवार्य रूप में वन गमन की व्यवस्था की है 'चौथेपन जाइय नृप कानन'।

वृक्षों के आध्यात्मिक महत्व की प्रशंसा मत्स्य पुराण में इस प्रकार की गई है-

'दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है।' विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णन किया गया है कि शास्त्र, जलाशय, वृक्ष तथा मंदिर ये चारों वस्तुएँ मनुष्य के मर जाने पर भी उसके जीवित शरीर कहे जाते हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि सौ पुत्रों की प्राप्ति से ज्यादा पुण्य एक वृक्ष लगाने में मिलता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि पत्तों, फूल फल द्वारा तथा नित्य ही अपनी शाखाओं द्वारा छाया प्रदान करके ये वृक्ष दूसरों के उपयोग में आते हैं–यह इनकी महान तपस्या है।

वृक्षों के गुणों की जितनी महिमा गाई जाए उतना ही कम है। मनुष्य को उसके जीवन हेतु प्राण वायु तो देते ही हैं अपितु जीवन लीला समाप्त होने पर उसके पार्थिव शरीर को अग्निदेव को समर्पित करने में सहायक का कार्य वृक्ष ही करते हैं।

मानव-सृष्टि सब कुछ वृक्षों पर अवलंबित है। ये ही सभी प्राणियों को आश्रय प्रदान करते हैं। अनेक का जीवन-यापन कराते हैं। वृक्ष काटने पर अनेक जीवन उजड़ जाते है। फिर क्या एक पेड़ काटना उचित है?

मानव जीवन का पेड़-पौधों से गहरा संबंध रहा है। पृथ्वी के पर्यावरण और मौसम के निर्धारण में वनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। वन धरती के मौसम की कुंजी है। वनों के विनाश से धरती का पर्यावरण खतरे में पड़ चुका है। इसको बचाने और लगाने के शोर में वन की इकाई को भुला दिया जाता है। वन की इकाई यानी वृक्ष का भी कम महत्व नहीं है। हमारे घर के अहाते में, सार्वजनिक स्थलों में, विद्यालय प्रांगण में लगा एक पेड़ भी पर्यावरण, संपूर्ण जीव-जगत और मानवता की सेवा कर रहा है। इस पर अनेक पक्षी बसेरा लेते हैं, अनगिनत कीड़े निवास करते हैं और कई प्रकार की सूक्ष्म वनस्पतियाँ पनपती हैं। अपने आकार के हिसाब से यह आस-पास की वायु में आक्सीजन छोड़कर वायु मंडल को शुद्ध करता है। पेड़ से छाया, फल और सुंदरता का सुख मिलता है। सरकारी भवनों, अस्पतालों, पार्कों आदि में लगे वृक्ष इसी प्रकार की सेवा करते हैं पर प्रायः इन्हें पर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता है।

प्रकृति ने किसी भी जीव को अपने आप में स्वतंत्र नहीं बनाया है। सभी जीवधारी आहार के लिए एक दूसरे पर निर्भर हैं जैसे घास को हिरण खाता है और हिरण को शेर। इसी प्रकार जल में मौजूद काई को घोंघा खाता है, तो घोंघे को वतख और बाद में बतख को मछलीमार बिलाव खा जाता है।

धरती पर मौजूद हर आहार- शृंखला की उत्पत्ति सूरज से है। धरती पर सूरज की बदौलत जीवन है। सौर ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा (जैसे शर्करा) में बदलने का काम केवल हरे पेड़ ही कर सकते हैं। पेड़-पौधों को रखने वाले शाकाहारी पशु इसी रासायनिक ऊर्जा को मांस में बदलते हैं। पेड़ों पर रहने वाले छोटे-छोटे कीड़े भी इसी का उपयोग करते हैं। ये कीड़े पेड़ के लगभग हर हिस्से को खा डालते हैं। जैसे कुछ कीड़े तने की छाल खा जाते हैं, तो कुछ पत्तियाँ,

फूल और फल, जमीन में रहने वाले कीड़े पेड़ की जड़ तक खा जाते हैं। जब पेड़ बढ़ रहा होता है तो हिरण आदि इसकी कोमल पत्तियों को चर जाते हैं। गाँवों और शहरों में यह काम भेड़-बकरी करती हैं। पेड़ों पर दिखने वाली गिलहरी बीजों और फलों को कुतर कर अपना पेट भरती है। अपने आहार के लिए पेड़ पर निर्भर रहने वाले शाकाहारी जीवों को कुछ मांसाहारी जीव उदरस्थ करते हैं, जैसे साँप, छिपकली, कीड़े और कुछ पक्षी आदि इनका शिकार इनसे बड़े मांसाहारी जीव करते हैं, जैसे छछूंदर, उल्लू, बाज लोमड़ी आदि। फिर इनका शिकार और बड़े मांसाहारी जीव करते रहते हैं जैसे बाघ, शेर, तेंदुआ आदि। जब ये मांसाहारी जीव मर कर मिट्टी में मिलते हैं तो भूमि को फिर से पोषक तत्व मिल जाते हैं। पेड़ इन पोषक तत्वों को भूमिसे सोखता है और फिर से आहार श्रृंखला शुरू हो जाती है। राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय ने आम और बरगद के पेड़ पर आने वाले आंगतुकों और मित्र पशु-पक्षियों, निवासी पक्षियों, कीड़ों और अन्य पौधों के बारे में जानकारी एकत्र की है जो निम्नप्रकार है :-

वृक्ष	आगंतुक, मित्र पशु-पक्षी	निवासी पक्षी	कीट	वनस्पतियाँ
बरगद	तोता, वसंता, कोयल, मैना, कठफोड़ा, फुदरी, उल्लू, कबूतर, गिलहरी, बंदर, बुलबुल, ऊदविलाव	कौआ, बगुला गसकोग वाक बगुला, मैना	भृंग चींटी माहू	अधिपादप प्रक्ट फफूंदी लाइकेन
आम	शक्कर जोरा, फ्लावर पैकर, कोयल, टिडस, मैना, वसंता, बंदर, गिलहरी, कबूतर, धुंधो, फ्लाई कैचर, तोता, बी-ईटर	मैना, तोता, बगुला, वाक बगुला, कौआ	मधुमक्खी तितलियाँ माहू, पतंग, मिलीका	वंदा प्रजाति फफूंदी, प्रेक्ट लाइकेन

(सा. सं 1 राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय वर्ष 2005)

एक ही पेड़ पर निवास करने वाले जीवों में आपस में आहार, जगह आदि के लिए कोई **प्रतिस्थायी नहीं होती** इसके लिए प्रकृति ने अद्‌भुत व्यवस्था कर रखी है।

कीड़ों की तरह पक्षी भी पेड़ पर अलग-अलग स्तरों पर निवास करते हैं। कुछ निचली शाखाओं पर रहते हैं तो कुछ ऊपर की शाखाओं पर फुदकते हैं। ऐसा इन्होंने अपने आहार को ध्यान में रखकर किया है। जिस पक्षी को पसंद के कीड़े या फल-फूल जिस स्तर पर मिलते हैं, वह उसी स्तर पर निवास करता है। पक्षियों ने अपनी आहार की आदतों के अनुसार अनुकूलन भी कर रखे हैं। इसी मर्यादा को आज मानव को अपनाने की जरूरत है। तथ्यों को यदि जीवन में उपासना के रूप में ग्रहण कर लिया जाए तो जीवन को विषाक्त होने से बचाया जा सकता है।

वृक्षों पर रहने वाली वनस्पतियों की संख्या प्राणियों से कहीं अधिक है। इन वनस्पतियों और पेड़ के बीच कई प्रकार के संबंध देखे गए हैं। कभी-कभी ये वनस्पतियाँ न तो पेड़ से कुछ लेती हैं और न उसे कुछ देती हैं। बस केवल सहारा भर प्राप्त करती हैं। कुछ वनस्पतियाँ पेड़ से कुछ लेती तो हैं, पर पेड़ को भी कोई न कोई लाभ पहुँचाती हैं। कुछ वनस्पतियाँ ज्यादा खतरनाक होती हैं जो पेड़ पर निर्भर होकर धीरे-धीरे उसकी जान ले लेती हैं इन्हें परजीवी पौधे कहते हैं।

हजारों तरह के फफूंदें भी पेड़ पर पनपती हैं। ये कई प्रकार के रोग पैदा करती हैं। इसी प्रकार जीवाणु भी पेड़ों को रोगी बनाते हैं पर इससे पेड़ का महत्व कम नहीं हो जाता। आखिर प्रकृति में इन जीवों को भी तो रहने के लिए कोई जगह चाहिए।

इस प्रकार हर वृक्ष एक कारखाना की तरह काम करता है यहाँ सूरज की ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में बदला जाता है। यह दुनिया की सबसे महत्वपूर्ण और अनोखी रासायनिक क्रिया है। तमाम वैज्ञानिक विकास के बावजूद अभी हम प्रकृति की इस अनूठी क्रिया को प्रयोगशाला में नहीं दुहरा पाए हैं। केवल हमने इस प्रक्रिया को जानने की शुरूआत की है। यह क्रिया प्रकाश संश्लेषण की जिसे केवल हरे पौधे ही

संपन्न कर सकते हैं, उनमें मौजूद क्लोरोफिन नामक रंजक के कारण है। इस तरह दुनिया की हर पत्ती इस अनोखी क्रिया में जुटी है। इस क्रिया में हरी पत्ती कार्बन डाइऑक्साइड (वायु मंडल) और पानी की उपस्थिति में और सौर ऊर्जा से शर्करा बनाती है और आक्सीजन वायु मंडल में छोड़ी जाती है। एक मोटे अनुमान के अनुसार दुनिया भर के हरे पेड़-पौधे हर साल लगभग 150 अरब टन से अधिक शर्करा बनाते है। सरसरी तौर पर यह आँकड़ा कोई खास प्रभावशाली नहीं दिखता। लेकिन अगर इसकी तुलना दुनिया के कुछ अन्य मानव निर्मित उत्पादों से करें तो यह खास चौंकाने वाला आँकड़ा है। दुनिया के सारे इस्पात और सीमेंट कारखानों का सालाना उत्पाद लगभग 135 करोड़ एवं 130 करोड़ टन है। पेड़-पौधों द्वारा बनाई गई शर्करा विभिन्न रूपों में इकट्ठी की जाती है जिसका हम नेतृत्व करते हैं। वृक्ष भी इसी से अपना जीवन चलाने के लिए ऊर्जा प्राप्त करता है।

शर्करा और आक्सीजन की क्रिया से रासायनिक ऊर्जा प्राप्त होती है। साथ ही कार्बन डाइऑक्साइड और पानी भी बनता है। इसी रासायनिक ऊर्जा से पेड़, फल-फूल बनाता है और वृद्धि करता है। इसे ही पेड़ की श्वसन क्रिया कहते हैं। इस प्रकार पेड़ दिन में (सूर्य के प्रकाश के कारण) वायु मंडल में आक्सीजन छोड़ता है (प्रकाश संश्लेषण द्वारा) और कार्बन डाइऑक्साइड (श्वसन के लिए) लेता है। लेकिन रात में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया न होने पर केवल कार्बन डाइऑक्साइड ही छोड़ता है। इसीलिए हमारे बड़े-बूढ़े रात में पेड़ के नीचे सोने को मना करते हैं। वैसे पेड़-पौधों में एक अन्य प्रकार का श्वसन भी होता है। इसमें शर्करा टूट कर कार्बन डाइऑक्साइड और अल्कोहल बनती है। पेड़ अल्कोहल का उपयोग करता है।

पेड़ का मरना भी एक महत्वपूर्ण क्रिया है जो प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक है। पेड़ को नष्ट या मिट्टी में मिलाने के लिए प्रकृति ने अद्भुत व्यवस्था कर रखी है। इसके लिए कई तरह की फफूंदें, जीवाणु ओर कुकुरमुत्ते (मशरूम) दिन रात काम करते हैं। ये पेड़ को सड़ाकर उससे अपना आहार भी प्राप्त करते हैं

28 4C HRD/C8-10

और पोषक तत्वों को मिट्टी में मिला देते हैं जिसका अन्य पेड़-पौधे उपयोग करते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि कुकुरमुत्ता मरे हुए पेड़ पर ही पनपते हैं। ये पेड़ के जीव-द्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) को साधारण रासायनिक तत्वों में बदल देते हैं। उदाहरण के तौर पर अमीनो अम्ल और शर्करा अलग हो जाते हैं। इसमें से कुछ का उपयोग कुकुरमुत्ते स्वयं करता हैं और बाकी का उपयोग अन्य पेड-पौधे करते हैं। कुछ कुकुरमुत्ते खाए भी जाते हैं जिन्हें खुम्भ कहा जाता है। इनमें कई अमीनो अम्ल और विटामिन पाए जाते हैं। इस तरह मरा वृक्ष भी परोक्ष रूप में हमें कुछ खाने को दे जाता है। मानव प्राणी का जीवन इन्ही वृक्षों से चलायमान है। आइए हम सभी वृक्षों के संरक्षण का व्रत लें।

❑

विविध

शब्द भंडार

प्रशासन शब्दावली

अंक	1. marks 2. figure 3. numeral 4. issue (journal)
अंकपत्र	marksheet
अंकसूची	marksheet
अंकित कीमत	nominal price
अंकित मूल्य	1. face value 2. nominal value
अंगरक्षक	bodyguard
अंगीकरण	adoption
अंगीकार करना	adopt
अंगुलिछाप	finger print
अंगूठा	thumb
अंगूठा चिह्न	thumb impression
अंगूठा निशान	thumb impression
अंग्रेजी अनुवाद	English version
अंत	conclusion
अंततः	lastly
अंतःकरण	conscience
अंतःक्षेप	intervention
अंतःक्षेप करना	intervene
अंतर्ध्वंस	sabotage

अंतर्निहित	1. involved 2. inherent
अंतर	1. variance 2. deviation 3. space
अंतरग्रहण	interception
अंतर्राष्ट्रीय संगठन	international organisation
अंतरविभागीय पत्राचार	inter-departmental reference
अंतरवेशन	interpolation
अंतरा एकक	inter-unit
अंतरानुभागीय पत्राचार	inter-sectional reference
अंतरानुभागीय परामर्श	inter-sectional reference
अंतरानुभागीय संचलन	inter-sectional movement
रजिस्टर	register
अंतराल	interval
अंतरालन	spacing
अंतरावधि	interval
अंतरावरोधन	interception
अंतराविभागीय	inter-departmental
अंतराविभागीय परामर्श	inter-departmental reference
अंतरासंचार	inter-communication
अंतरिम	space
अंतरिम	interim
अंतरिम आदेश	interim order
अंतिरम उत्तर	interim reply
अंतरिम पंचाट	interim award
अंतरिम रिपोर्ट	interim report
अंतरिम सहायता	interim relief
अंतर्ग्रस्त	involved

अंतर्देशीय	inland
अंतर्दृष्टि	insight
अंतर्मंत्रालयी हवाला	interministerial reference
अंतर्वस्तु	contents
अंतर्विभागीय बैठक	interdepartmental meeting
अंत शेष	closing balance
अंत:स्थलीय	inland
अंत:स्थापित करना	insert
अंतिम	1. ultimate
	2. final
अंतिम उत्पाद	end product
अंतिम चेतावनी	1. ultimatum
	2. final warning
अंतिम तिथि	1. closing date
	2. last date
अंतिम निकासी	final withdrawal
अंतिम भुगतान	last payment
अंतिम रिर्पोट	final report
अंतिम रूप देना	finalise
अंतिम वेतन प्रमाणपत्र	last pay certificate
अंतिम संदाय	last payment
अंत्येष्टि	funeral ceremony
अंध विद्यालय	blind school
अंधाधुंध	reckless, rash, indiscriminate
अंपायर	umpire
अंश	1. contents 2. degree 3. share 4. part
	5. fraction 6. passage
अंशकालिक	part-time
अंशदान	contribution

अंशदायी भविष्य निधि	contributory provident fund
अंशदायी योजना	contributory scheme
अंश-सुपुर्दगी	part delivery
अंशांक	degree
अकादमिक	academic
अकादमिक छुट्टी	academic leave
अकादमी	academy
अकानूनी	non-statutory
अकारण	unwarranted
अकारादिक्रम	alphabetic order
अकार्य दिवश	dies non
अकाल	1. premature 2. famine
अकाल राहत	famine relief
अकिंचन	pauper
अकुशल	unskilled
अकुशल श्रमिक	unskilled labour
अकृत	null
अकृत करना	nullify
अकेला	single, solitary
अकेला टेंडर	single tender
अकेला मामला	solitary case
अक्खड़	arrogant
अक्खड़पन	arrogance
अक्षम	incompetent
अक्षमता	incompetency, incompetence
अक्षय निधि	endowment
अखंडता	1. integrity 2. integration
अखबार	newspaper
अखिल भारतीय सेवा	All India Service

अगम्य	inaccessible
अगली कार्रवाई	further action
अगवा	kidnapping
अगवानी करना	receive
अगोपनीय	non-confidential
अग्नि-बीमा	fire-insurance
अग्नि-शमन	fire fighting
अग्निशमन सेवा	fire service

आयोग के प्रकाशन

(क) आयोग द्वारा प्रकाशित शब्द-संग्रहों की सूची

क्र. सं.	शब्द-संग्रह	मूल्य
1.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान, खंड-1, 2 (पृ. 2058)	174.00
2.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 819)	236.00
3.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान, खंड-1, 2 (पृ. 1297)	292.00
4.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	132.00
5.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : कृषि विज्ञान (पृ. 223)	278.00
6.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषजविज्ञान, नृविज्ञान	239.40
7.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)	48.50
8.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी (पृ. 104)	48.00
9.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत्, यांत्रिक) (पृ. 566)	57.00
10.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी-2 (पृ. 186)	84.00
11.	वृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : प्राणिविज्ञान (पृ. 526)	311.00

विषयवार शब्दावलियाँ/ शब्द-संग्रह

1.	मानविकी शब्दावली - (नृविज्ञान) (पृ. 179)	10.00
2.	कंप्यूटरविज्ञान शब्दावली (पृ. 337)	87.00
3.	इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली (पृ. 378)	55.00
4.	वाणिज्य शब्दावली (पृ. 172)	259.00
5.	समेकित रक्षा शब्दावली	284.00
6.	अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	30.00
7.	भाषाविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 249)	113.00
8.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	नि:शुल्क
9.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	नि:शुल्क
10.	पशुचिकित्सा विज्ञान शब्दावली (पृ. 174)	82.00
11.	लोक-प्रशासन शब्दावली (पृ. 98)	52.00
12.	अर्थशास्त्र शब्दावली (मानविकी शब्दावली-9) (पृ. 96)	4.40
13.	नृविज्ञान शब्दावली (पृ. 198)	10.00

14. गुणता-नियंत्रण शब्दावली (पृ. 67)	38.00
15. रेशमविज्ञान शब्दावली (पृ. 85)	50.00
16. कोशिका-जैविकी शब्द-संग्रह (पृ. 197)	62.00
17. गणित शब्द संग्रह (पृ. 357)	143.00
18. भौतिकी शब्द-संग्रह (पृ. 536)	119.00
19. गृहविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 144)	60.00
20. रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह (पृ. 167)	-
21. भूगोल शब्द-संग्रह (पृ. 369)	200.00
22. खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	-
23. भूविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 328)	88.00
24. संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द संग्रह (पृ. 48)	15.00
25. पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (पृ. 184)	12.25
26. सूचना एवं प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह (पृ. 393)	231.00
27. पर्यावरणविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 429)	381.00
28. रसायन शब्द-संग्रह (पृ. 918)	592.00
मूलभूत शब्दावलियाँ	
1. गणित की मूलभूत शब्दावली (पृ. 135)	नि:शुल्क
2. कंप्यूटर विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 115)	नि:शुल्क
3. भूगोल की मूलभूत शब्दावली (पृ. 156)	नि:शुल्क
4. भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 141)	नि:शुल्क
5. वनस्पतिविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 207)	नि:शुल्क
6. पशुचिकित्सा विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 179)	नि:शुल्क
7. आयुर्विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 613)	नि:शुल्क
(ख) परिभाषा कोशों की सूची	
1. भूविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 284)	10.00
2. भूविज्ञान परिभाषा कोश-2 (सामान्य भूविज्ञान) (पृ. 196)	13.50
3. संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	-
4. शैलविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 195)	-
5. प्रारंभिक पारिभाषिक रसायन कोश (पृ. 242)	3.25
6. उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00
7. रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश-3 (पृ. 280)	25.00
8. पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश (पृ. 188)	173.00
9. प्रारंभिक पारिभाषिक कोश गणित (पृ. 298)	18.75
10. गणित परिभाषा कोश (पृ. 253)	11.00
11. आधुनिक बीजगणित परिभाषा कोश (पृ. 159)	11.00
12. सांख्यिकी परिभाषा कोश (पृ. 432)	18.00
13. भौतिकी परिभाषा कोश (पृ. 212)	3.15
14. आधुनिक भौतिकी परिभाषा कोश (पृ. 290)	13.00

15. भूगोल परिभाषा कोश	10.00
16. मानव भूगोल परिभाषा कोश (पृ. 228)	18.00
17. मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 361)	231.00
18. गृहविज्ञान परिभाषा कोश	-
19. गृहविज्ञान परिभाषा कोश-2 (पृ. 64)	9.00
20. इलेक्ट्रोनिकी परिभाषा कोश (पृ. 215)	22.00
21. तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश (पृ. 76)	10.00
22. यांत्रिकी इंजीनियरी परिभाषा कोश (पृ. 135)	84.00
23. सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश (पृ. 112)	61.00
24. विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
25. धातुकर्म परिभाषा कोश (पृ. 441)	278.00
26. आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश (शल्यविज्ञान)	48.05
27. आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश	336.00
28. इतिहास परिभाषा कोश (पृ. 297)	20.50
29. शिक्षा परिभाषा कोश (पृ. 197)	13.50
30. शिक्षा परिभाषा कोश-2 (पृ. 205)	99.00
31. मनोविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 62)142	9.50
32. दर्शन परिभाषा कोश (पृ. 432)	9.75
33. अर्थशास्त्र परिभाषा कोश (पृ. 232)	117.00
34. अर्थमिति परिभाषा कोश (पृ. 245)	17.65
35. वाणिज्य परिभाषा कोश (पृ. 173)	24.70
36. समाजकार्य परिभाषा कोश (पृ. 183)	-
37. समाजशास्त्र परिभाषा कोश (पृ. 212)	71.40
38. सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 287)	24.00
39. पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 196)	49.00
40. पत्रकारिता परिभाषा कोश (पृ. 164)	87.50
41. पुरातत्व परिभाषा कोश (पृ. 391)	76.50
42. पुरातत्व परिभाषा कोश-2 (पृ. 453)	509.00
43. पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश (पृ. 104)	28.55
44. भाषाविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 212)	89.00
45. भाषाविज्ञान परिभाषा कोश खंड-2 (पृ. 259)	59.00
46. कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 144)	102.00
47. राजनीतिविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 356)	343.00
48. प्रबंधविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 191)	170.00
49. अंतर्राष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश (पृ. 293)	344.00
50. कृषिकीटविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 213)	75.00
51. वनस्पतिविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 204)	75.00

52.	पुरावनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 161)	80.50
53.	पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश (पृ. 185)	75.00
54.	पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 138)	75.00
55.	मृदाविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 149)	77.00
56.	प्राणिविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 220)	10.00
57.	प्राणिविज्ञान परिभाषा कोश (परिवर्धित) (पृ. 540)	216.00
58.	सूक्ष्मजैविकी परिभाषा कोश (पृ. 193)	45.00
59.	भारतीय दर्शन परिभाषा कोश खंड-1 (पृ. 171)	51.00
60.	सूत्रकृमिविज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 263)	125.00

पाठमालाएँ/मोनोग्राफ

प्रकाशित

1.	ऐतिहासिक नगर	195.00
2.	प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00
3.	समुद्री यात्राएँ	79.00
4.	विश्व दर्शन	53.00
5.	अपशिष्ट प्रबंधन	17.00
6.	कोयला : एक परिचय	294.00
7.	कोयला : एक परिचय परिवर्धित संस्करण	425.00
8.	वाहित मल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
9.	पर्यावरणीय प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन	23.25
10.	रत्न-विज्ञान – एक परिचय	115.00
11.	2-दूरीक एवं 2-मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
12.	पराज्यामितीय फलन	90.00
13.	ऊर्जा : संसाधन और संरक्षण	105.00
14.	स्वतंत्रता प्राप्ति पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	176.00
15.	समकालीन भारतीय दर्शन के मानववादी चिंतक	153.00
16.	स्वास्थ्य दीपिका	200.00
17.	इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी	90.00
18.	भारतीय कृषि का विकास	–
19.	भविष्य की आशा- हिंद महासागर	154.00
20.	जैव प्रौद्योगिकी – अनुसंधान एवं विकास	134.00
21.	इस्पात – एक परिचय	146.00
22.	मानसून पवन – भारतीय जलवायु का आधार	146.00
23.	मैग्नेसाइट – एक भूवैज्ञानिक अध्ययन	167.00
24.	प्राकृतिक खेती	167.00
25.	हिंदी में स्वतंत्रतापरवर्ती विज्ञान-लेखन	280.00
26.	विश्व के प्रमुख धर्मों में धर्म समभाव अवधारणा – एक तुलनात्मक अध्ययन	490.00
27.	हिंदी विज्ञान पत्रकारिता- कल आज और कल	167.00
28.	मृदा एवं पादप पोषण	–
29.	नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी	398.00
30.	पादपों में कीटप्रतिरोध और समेकित कीटप्रबंधन	357.00
31.	द्रवचालित मशीन	–
32.	पृथ्वी : उद्भव और विकास	80.00

33.	भारत में भैंस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
34.	भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	-
35.	भारत में प्याज एवं लहसुन की खेती	82.00
36.	पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग	60.00
37.	ठोस पदार्थ यांत्रिकी	995.00
38.	वैज्ञानिक शब्दावली, अनुवाद एवं मौलिक लेखन	34.00
39.	मृदा उर्वरता	410.00
40.	पशुओं के कवकीय रोग उनका उपचार	93.00
41.	समाजिक एवं प्रक्षेत्र वानिकी	54.00
42.	विश्व के प्रमुख धर्म	118.00
43.	सैन्य विज्ञान पाठसंग्रह	100.00
44.	लेटर प्रेस मुद्रण	270.00
45.	लोहीय तथा अलोहीय धातु	68.00
46.	बाल मनोविज्ञान पाठमाला (3)	58.00
47.	भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण	343.00
48.	विकास मनोविज्ञान (भाग 1)	40.00
49.	विकास मनोविज्ञान (भाग 2)	30.00
50.	पृथ्वी से पुरातत्व	40.00

ज्ञान गरिमा सिंधु 'त्रैमासिक' पत्रिका की सदस्यता हेतु पत्र-व्यवहार का पता :

वैज्ञानिक अधिकारी, (बिक्री एकक)
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110 066
दूरभाष - (011) 26105211-246 फैक्स - (011) 26101220

पत्रिका को खरीदने के लिए संपर्क करें :

वैज्ञानिक अधिकारी, (बिक्री एकक)
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली - 110 066

अथवा

प्रकाशन नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सिविल लाइन्स,
दिल्ली - 110 054

आयोग के प्रकाशनों की बिक्री के लिए प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता	फोन नं.
1.	प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, (शहरी कार्य व रोजगार मंत्रालय), सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054	3967640/31 3967823
2.	किताब महल, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरिया बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली - 110001	3363708
3.	पुस्तक डिपो, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता - 700001	033-2483813
4.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी. जी. ओ. काम्प्लैक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई - 400020	
5.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, उद्योग भवन, गेट नं. 3, नई दिल्ली - 110001	385421/291
6.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, (लॉयर्स चैंबर) भारत सरकार, दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली - 110003	3383891
7.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली - 110001	

हिंदी ग्रंथ अकादमियाँ एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बोर्ड

(क) हिंदी ग्रंथ अकादमियाँ

1. निदेशक,
   उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान,
   हिंदी भवन, महात्मा गांधी मार्ग,
   लखनऊ -226801

2. निदेशक
   बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी,
   प्रेमचंद मार्ग, राजेंद्र नगर,
   पटना -800001

3. संचालक,
   मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी,
   रवींद्रनाथ ठाकुर मार्ग, बान गंगा,
   भोपाल -462203

4. निदेशक
   राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी,
   प्लॉट नंबर -1,
   झालाना संस्थानिक क्षेत्र,
   जयपुर -302004

5. निदेशक,
   हरियाणा साहित्य अकादमी,
   कोठी नं. 897, सेक्टर-2,
   पंचकूला -134112 (हरियाणा)

6. निदेशक,
   हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय,
   दिल्ली विश्वविद्यालय, बैरक नं. 2,
   4 कैवलरी लाइन, दिल्ली -110007

7. प्रभारी,
   प्रकाशन निदेशालय,
   गो. ब. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी
   विश्वविद्यालय, पंतनगर-263145
   (ऊधम सिंह नगर)

8. निदेशक,
   प्रकाशन निदेशालय,
   हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय,
   हिसार -125005

9. डीन, विज्ञान संकाय,
   काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
   वाराणसी -221005

(ख) अन्य भारतीय भाषाओं के पाठ्य-पुस्तक बोर्ड

10. निदेशक,
    तेलुगु अकादमी, 8-5-395
    हिमायत नगर, हैदराबाद-500029

11. अध्यक्ष,
    विश्वविद्यालय ग्रंथ निर्माण बोर्ड,
    गुजरात महाविद्यालय,
    एलिस ब्रिज कैपिटल प्रोजेक्ट
    भवन, अहमदाबाद-380006

12. निदेशक
    स्टेट इंस्टीट्यूट ऑफ लैंग्वेजिज,
    नालंदा,
    तिरुवनंतपुरम्, केरल-695003

13. निदेशक,
    महाराष्ट्र विश्वविद्यालय बुक
    प्रोडक्शन बोर्ड, विधि
    महाविद्यालय, अमरावती मार्ग,
    नागपुर-440010

14. निदेशक,
    पंजाब स्टेट विश्वविद्यालय,
    टेक्स्ट बुक बोर्ड,
    S.C. O. नं. 289-91
    सेक्टर-32-D,
    चंडीगढ़-160047

15. मुख्य कार्यपालक अधिकारी,
    वेस्ट बंगाल स्टेट बुक बोर्ड,
    आर्य मेंशन, 8वाँ तल,
    6-ए राजा सुबोध मलिक
    स्क्वायर, कोलकाता-700013

16. सचिव,
    तमिलनाडु टेक्स्ट बुक सोसाइटी,
    महाविद्यालय रोड,
    चेन्नई।

17. **असम**

    1. सचिव,
       विश्वविद्यालय प्रकाशन विभाग,
       गुवाहाटी विश्वविद्यालय,
       गोपीनाथ बारदोली नगर,
       गुवाहाटी-781014

    2. सचिव,
       कोऑर्डिनेशन कमेटी फॉर
       प्रोडक्शन ऑफ टेक्स्ट बुक्स,
       डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय, डिब्रूगढ़।

18. **कर्नाटक**

    1. निदेशक,
       परसारंगा ज्ञान भारती,
       बेंगलूर विश्वविद्यालय,
       बेंगलूर-560056

    2. प्रोफेसर ऑफ कन्नड़
       यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर साइंस
       डिपार्टमेंट ऑफ कन्नड़ स्टडीज,
       हैब्बल, बेंगलूर-560024

    3. निदेशक,
       प्रकाशन विभाग,
       मैसूर विश्वद्यिालय मैसूर,
       मानस गंगोत्री, मैसूर-57006

    4. निदेशक,
       इंस्टीट्यूट ऑफ कन्नड़ स्टडीज,
       कर्नाटक विश्वविद्यालय,
       टेक्स्ट बुक निदेशालय,
       धाड़वार-3

19. **उड़ीसा**

    1. निदेशक,
       उड़ीसा राज्य पाठ्य-पुस्तक प्रणयन
       एवं प्रकाशन ब्यूरो,
       फ्लैट नं. ए-11, सुखबिहार,
       भुवनेश्वर।

ग्राहक फार्म

अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली - 110066

महोदय,

कृपया मुझे "ज्ञान गरिमा सिंधु" (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए मास.....से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क.....रुपए, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक..... द्वारा भेज रहा /रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम .....

पूरा पता .....
.....

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्क:	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 14.00	पौंड 1.64 डालर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु. 50.00	पौंड 5.83 डालर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 8.00	पौंड 0.93 डालर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु. 30.00	पौंड 3.50 डालर 2.88

डिमांड ड्राफ्ट "अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग" के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए।

यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्न करें :

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी/श्रीमती/श्री .....

इस विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के .....
विभाग के छात्र/की छात्रा हैं।

हस्ताक्षर

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)
(सील)

MGIPRRND—2840 HRD/08—2000 Copies

© Government of India

Controller of Publications

प्रतीक

पी.सी.एस.टी.टी.-2 (1-6) 2007

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित
2008